◈ ओ३म् ◈

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्यार्थं पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ।। (स्कन्द पुराण)

"सब शास्त्रों को देखकर और बार-बार विचार करके एकमात्र यही सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि—सदा भगवान् नारायण का ध्यान करना चाहिए।"

आनन्द भगवत्-कथा

अर्थात्

वैदिक सत्यनारायण व्रत कथा

लेखक

दिवंगत महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

प्रकाशक

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

कथा का महत्त्व

भारतीय लोक-व्यवहार में कथा-कहानियों का विशेष स्थान है, क्योंकि कहानियाँ सुनने और पढ़ने में रोचक होती हैं। वैदिक काल में आध्यात्मिक कथाओं का प्रचलन था, मध्यकाल में ऐतिहासिक कथाओं का प्रचलन हुआ। पुराणों की कथाओं का रूप आध्यात्मिक और ऐतिहासिक आधार ही तो है।

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी की कथा-शैली सुन्दर है। उनके प्रवचनों में आध्यात्मिकता के साथ-साथ जो दृष्टान्त होते हैं उनमें रोचकता के साथ ज्ञान का भी समावेश रहता है।

"आनन्द गायत्री-कथा" तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का "एक ही रास्ता" नामक कथा-पुस्तकों को जन-साधारण ने बहुत पसन्द किया है। अल्प समय में इनके कई संस्करण हुए हैं और हो रहे हैं।

यह भगवत्-कथा अर्थात् भगवान् सत्यनारायण की व्रत-कथा भी रोचक तथा ज्ञानमय कथाओं से भरपूर है। आशा है, धर्म-प्रेमी जन इसे अपनाकर लाभ उठायेंगे।

—प्रकाशक

दुःखी मानव से

वह कौन पाषाण-हृदय मानव है, जो दुःखी मानव को देख दुःखी न हो उठे? और आज संसार में दुःखी कौन नहीं? किसी को निर्धनता का दुःख, किसी को अतिधन का दुःख; कोई भूख से दुःखी, कोई अजीर्ण रोग से दुःखी; कोई बहुसन्तान से दुःखी, कोई निस्सन्तान होने से दुःखी; कोई बेकारी से दुःखी, कोई कार्य अधिक होने से दुःखी; कभी अनावृष्टि का दुःख, कभी अतिवृष्टि का दुःख। इसी प्रकार अनेक द्वन्द्वों ने मानव को दुःखी कर रखा है। सब प्रकार के इन दुःखियों के दुःख-नाश का एक ही महासाधन है कि मानव धीरे-धीरे प्रकृति-माया-भोग्य पदार्थों से परे हटता चला जाये और आत्मा की ओर बढ़ता चला जाये। माया का भोग बेशक करे परन्तु उसमें लिप्त न हो जाये। माया की नैया पर बैठकर भव-पार को उतर जाये, माया की नैया पर बैठा ही न रहे।

इस माया के पर्दे के पीछे उस अनन्त, असीम सौन्दर्य की झाँकी देखे, जिसके अल्प-से संकेत से जड़ भी सुन्दर बन जाता है। हमारे पूर्वजों ने त्याग तथा दान को अपनी संस्कृति में जो सबसे ऊँचा स्थान दिया वह इसलिए ताकि गृहस्थ लोग माया को परे हटाने और अपनी कमाई का त्याग करने का अभ्यास करते-करते माया से सर्वथा पृथक् हो जायें। जब भी माया से अलग हुए, तभी आत्मा का सहारा स्वयमेव मिल गया।

—यह जो "वैतरणी नदी" का नाम सुना जाता है यह क्या है? "वैतरणी" शब्द की निरुक्ति में ही त्याग तथा दान का अर्थ छिपा हुआ है। "वितरण" दान को, बाँटने को कहते हैं। वितरण से वैतरणी शब्द बनता है। तब यह नदी क्या हुई? दान की—त्याग की नदी है यह, और इसे पार करने में ही कल्याण है और त्याग तथा दान भी उस पदार्थ को करने की आज्ञा है, जिस

पदार्थ को हमारी संस्कृति में अति श्रेष्ठ और सर्वोत्तम बतलाया गया है। यजुर्वेद में यह पूछा गया है—

"**कस्य मात्रा न विद्यते ?**" कौन-सा पदार्थ है जिसके समान और कोई नहीं ? तब अगले मन्त्र में यह उत्तर दिया गया है कि—"**गोस्तु मात्रा न विद्यते।**"

"गाय के समान कोई पदार्थ नहीं है।" गाय वैदिक संस्कृति—भारतीय संस्कृति, हाँ-हाँ मानव-संस्कृति की सबसे प्यारी, सबसे कीमती और सबसे उत्तम वस्तु है। इसी को दान में देकर वैतरणी नदी पार होने की बात कही जाती है। परन्तु चाहे गाय अत्यन्त कीमती है, है तो माया तथा चेतनता का एक रूप ही, इसलिए इसको भी त्याग करने का विधान बना दिया ताकि माया से अलग होने का स्वभाव पड़ जाए और माया से हटकर मानव उस आत्मा के दर्शन कर पाये, जिसके लिए यह देह मिला है।

—सर्व-साधारण श्री सत्यनारायण-व्रत-कथा इसलिए सुनते हैं ताकि निर्धनता, रोग, कष्ट, क्लेश से छुटकारा मिले; परन्तु दुःख फिर भी पीछा नहीं छोड़ते। क्या कारण है इसका ?

कारण केवल यह है कि हम श्री सत्यनारायण का व्रत नहीं लेते, उस व्रत का पालन करने के लिए तप भी नहीं तपते, कथा भी नहीं सुनते। यदि श्रवण करते भी हैं तो उसका मनन नहीं करते। यदि मनन कर भी लेते हैं तो निदिध्यासन तक पहुँचते ही नहीं। हम तो तप तथा कथा का केवल माहात्म्य सुनते हैं और इतने मात्र से कार्य-सिद्धि होती नहीं।

जब मैं धर्मशाला जेल में बन्दी था तो आध्यात्मिक ग्रन्थों का प्रचार करनेवाले और जनता के सामने जीवनप्रद तथा आत्मोत्थान करनेवाला सुन्दर, सरल साहित्य रखने का विशेष यत्न करने-

वाले गोविन्दराम हासानन्द जी ने मुझे प्रेरणा दी कि मैं अबके भगवत्-कथा लिखूं। इसी कथा का नाम श्री सत्यनारायण-व्रत-कथा है। इसके लिए मुझे पर्याप्त ग्रन्थ देखने तथा पढ़ने पड़े।

इस कथा का वर्णन स्कन्दपुराण के रेवा खण्ड के अन्तिम पाँच अध्यायों में है, परन्तु वहाँ कथा न देकर केवल माहात्म्य ही लिखा गया है। मैंने आवश्यक समझा कि इसके सम्बन्ध में सारे रहस्य को स्पष्ट कर दूं।

—वह 'नैमिषारण्य तीर्थ' कौन-सा है, जहाँ योगी नारद पहुँचे ? सत्यनारायण किसे कहते हैं ? व्रत क्या है ? कैसे लिया जाता है ? और वह कथा कौन-सी है ?—इन सब बातों को मैंने अपनी अल्प बुद्धि तथा अनुभवानुसार यहाँ प्रकट करने का यत्न किया है।

मेरा अटल विश्वास है कि नारद जैसा योगी जब ध्यानावस्थित हुआ और यह संकल्प लेकर ध्यान-अवस्था में गया कि प्रभु से दुनिया के दुःखों के नाश का साधन जानूं, तो उस योगारूढ़ अवस्था में नारद जी को भगवान् की ओर से जो आदेश मिला, वह निस्सन्देह संसारी लोगों के दुःखों का अन्त करनेवाला है। प्रभु के सच्चे सन्त का स्नेह-सम्पन्न हृदय ही इसका अनुभव कर सकता है परन्तु आदेशानुसार हमें व्रती—हाँ "महिव्रतः"[1] महान् व्रती बनना होगा।

महान् व्रती बनकर तब प्रभु की, नारायण की कथा सुनो। कोई विद्वान्, कोई अनुभवी, कोई ब्रह्मनिष्ठ सुनाये तो सुनो—नहीं-नहीं, अपने प्यारे की कथा दिव्य कानों से सुनो। उसकी कथा वेद तो सुनाते ही हैं—बह रही नदियों के नाद में, झर रहे झरनों की झंकार में, वायु के मधुर झकोलों

१. सामवेद—पूर्वार्चिक पावमान २

में, आकाश के मुस्कराते तारों में, रेगिस्तान के तपते रेत-कणों में—हाँ, हर स्थान में उसी की कथा सुनो। उसकी कथा, उसकी महिमा तो निरन्तर सुनाई दे रही है। हाँ, यह गाथा सुनने के लिए पहले भक्ति-रस पी लो, श्रद्धा का सोम पी लो। ओ दुःखी मानव! एक बार प्रभु के प्यार का व्रत लेकर उसकी कथा सुन ले और सुखी हो जा। आधुनिक काल में दुनिया अत्यन्त चिन्तित है। शान्ति का स्रोत बहाने के लिए शान्तिप्रिय महानुभाव यत्न-शील हैं। चारों ओर यह पुकार सुनी जा रही है कि अणु बमों का बनाना तथा परीक्षण बन्द करो, परन्तु यह पुकार सुनी जा नहीं रही, और यदि सुन भी ली जावे और अणु-बम के परीक्षण बन्द हो भी जायें, तो भी क्या शान्ति स्थापित हो सकेगी? कदापि नहीं। जब तक मानव का हृदय नहीं बदलता और वह माया के स्थान पर आत्मा का महत्त्व अनुभव नहीं करता, तब तक न शान्ति, न सुख, न चैन, कुछ भी मानव को मिलनेवाला नहीं—और श्री नारायण ने दुःखी दुनिया को सुखी करने का यही सरल-सीधा साधन बतलाया कि सत्यनारायण का ज्ञान प्राप्त करने का व्रत लेकर ही दुनिया सुखी हो सकती है। मैंने भी इसी उद्देश्य को समक्ष रखकर यह गाथा लिखी है, ताकि लोग शान्ति तथा सुख के असली मार्ग पर चलने की प्रेरणा ले सकें।

बुद्ध की तपोभूमि, राजगृह (बिहार)
माघ अमावस्या २१०४

आनन्द स्वामी सरस्वती

◈ ओ३म् ◈

आनन्द भगवत्-कथा या सत्यनारायण-व्रत-कथा

पहला सत्संग

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो!

तीन पदार्थ संसार में दुर्लभ बतलाये गए हैं, जो प्रभु-कृपा से ही प्राप्त होते हैं—

(१) मनुष्यत्व, (२) मुमुक्षुत्व और (३) साधु-सन्त, महात्मा, विद्वान् की संगति।

बड़े पुण्य कर्म किये हों और प्रभु-कृपा साथ हो, तब मानव-चोला मिलता है। इसका महत्त्व इसलिए है कि इसके द्वारा मनुष्य दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति का प्रयत्न करने के लिए पूर्णरूप से स्वतन्त्र है। वह चाहे तो इस चोले द्वारा ज्ञान, कर्म, उपासना के अमोघ शस्त्रों के सारे बन्धनों को काटकर परम-आनन्द को प्राप्त कर सकता है। परन्तु यदि मानव-योनि में भी यह परम-उद्देश्य पूर्ण न किया और इस दुर्लभ मानव-योनि को केवल खाने-पीने, सो रहने, ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में जलते रहने और इन्द्रियों की तृप्ति के लिए दिन-रात योजनाएँ बनाने ही में लगाये रखा तो महानाश[1] के लिए तैयार

---

१. इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। (केन० २।५)

अगर तूने उसे (आत्मा को—अपने-आपको) यहाँ इस जन्म में जान लिया तो ठीक है, अगर यहाँ नहीं जाना तो विनाश ही विनाश—महानाश है।

रहना होगा। इसलिए मानव-चोला पाकर नाश से बचने के लिए मुमुक्षुत्व की भावना से भरपूर रहना होगा।

—मुमुक्षुत्व क्या है ? अपने प्यारे प्रियतम के वियोग में, विरह में, जैसे एक सच्चा प्रेमी विकल हो जाता है, बेचैन हो जाता है, इसी प्रकार मानव को परमात्मा से मिलने के लिए तड़प पैदा करनी होगी; शरीर के सुख-आराम के सारे साधन जुटाते हुए, उस प्यारे की खोज में लगे रहना होगा जिससे बिछुड़कर मानव दुःखी हो रहा है। दुःखी हो भी इसीलिए रहा है कि मानव उस आनन्द से विमुख हो गया है। जब तक आनन्द के स्वामी से युक्त नहीं होता तब तक आनन्द मिल भी कैसे सकता है ? विरह का अर्थ है अपने प्रियतम के प्रेम पर मर मिटने की लगन। इसी लगन में इतना मगन कि अपनी सुधि भी न रहे, और सुधि हो तो अवस्था यह हो कि—

विरह-अग्नि तन में तपै, अंग सभी अकुलाय।
घर सूना जिव पीव महँ, मौत ढूंढ फिरि जाय।। (कबीर)

प्रेमी का विरह-मार्ग तो इसी प्रकार का होता है। विरही हानि-लाभ, सुख-दुःख, लोक-निन्दा या लोक-स्तुति से ऊपर हो जाता है। उसके सिर पर एक ही धुन सवार होती है कि किसी प्रकार प्रियतम से मिलाप हो, और जब तक मिलाप न हो तब तक विरह का रूप यही होगा—

उर में दाह, प्रवाह दृग, रह-रह निकले आह।
मर मिटने की चाह हो, यही विरह की राह।।

मुमुक्षु या प्रेमी या विरही चलते-फिरते, जागते-सोते, हर समय एक ही बात सामने रखता

है कि मैं कोई पग ऐसा न उठाऊँ जो मुझे मेरे प्यारे प्रभु से दूर कर दे, अपितु पग ऐसा उठाऊँ कि प्रतिदिन प्रभु के निकट ही होता चला जाऊँ; माया के जिस कीचड़ में फँस गया हूँ, इससे छूट जाऊँ। मुमुक्षु का अर्थ ही है—छूट जाने, मुक्त हो जाने, बन्धन-रहित हो जाने की उत्कट इच्छा रखनेवाला।

मैं आजकल "सब-जेल धर्मशाला" (कांगड़ा) की पथरीली-संगलाख दीवारों में बन्द हूँ। जेल नन्हा-सा है, परन्तु यह एक बड़ा बन्धन प्रतीत होता है। यह संकल्प ही कि हम बन्दी हैं, मन तथा शरीर पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहता; मुक्त हो जाने की प्रतीक्षा होती रहती है। मानव भी एक बड़े भारी जेल—सृष्टि में आया हुआ है। इससे छुटकारा पाना कौन नहीं चाहता ? यदि ऐसी इच्छा उत्पन्न नहीं होती तो समझना होगा कि अभी प्रभु-कृपा प्राप्त नहीं है। बड़ी भारी संख्या में ऐसे लोग हैं जिनके मन में प्रभु-मिलन की कामना ही जागरित नहीं होती, वे माया के दलदल में फँसे रहना ही अच्छा समझते हैं। उनके लिए धन-दौलत, सुन्दर पत्नी अथवा पति, पुत्र-पौत्र और सांसारिक ऐश्वर्य ही सब-कुछ है। वे न परलोक को मानते हैं, न ईश्वर को। उनके लिए यह शरीर ही पूजा का मन्दिर है। इसी नश्वर शरीर की पूजा करते-करते वे चल देते हैं। यम ऋषि मुमुक्ष नचिकेता से कह रहा है कि, "संसार के लोग अविद्या—अज्ञान में फँसे हुए, सांसारिक भोगों में पड़े हुए, अपने को धीर और विद्वान् माने फिरते हैं। टेढ़े रास्तों से इधर-उधर भटकते हुए ये मूढ़ ऐसे जा रहे हैं, जैसे अन्धा अन्धे को रास्ता दिखा रहा हो। जो बड़ा होकर भी बुद्धि का बच्चा ही है, धन के मोह से जो दूसरी कोई बात सोच ही नहीं सकता, ऐसे प्रमादी को साम्पराय—प्रभु-मिलन के

उपाय, यम-नियम—पसन्द नहीं आते। वह यह मान बैठा है कि यही लोक है—परलोक नहीं है। ऐसा व्यक्ति बार-बार मेरे (मृत्यु के) चगुल में आ फँसता है।"[1]—ऐसे लोग निश्चित प्रभु-कृपा से वंचित हैं।

बहुधा लोग तो ईश्वर-कृपा को माया के माप-तोल ही से मापते हैं—कोई सौन्दर्य का नमूना हुआ, कोई धन का भण्डार हुआ, कोई स्वास्थ्य का, शक्ति का पुञ्ज हुआ, कोई सम्बन्धियों-मित्रों का प्यार हुआ, किसी के यश-कीर्ति का पतंग आकाश पर चढ़ा हुआ हो तो यह कहा जाता है कि इस पर प्रभु की कृपा है; परन्तु इन पदार्थों को प्रभु-कृपा समझना भारी भूल है। ये सारे पदार्थ होते हुए भी यदि वह मानव "मानसिक शान्ति" से वंचित है तो समझो कि उस पर प्रभु-कृपा नहीं है। मन की शान्ति तो विरले ही को मिलती है। यह भगवान् की विशेष देन है, यह उसके प्यार का सबसे बड़ा निशान है, और यह केवल मुमुक्षु के नसीब में होती है, क्योंकि मुमुक्ष की भावना प्रभु-कृपा के बिना पैदा नहीं होती।

यह सांसारिक सुख-भोग की सामग्री, यह सम्पत्ति और सारे वैभव तो खिलौने हैं, जो जीवन-यात्रा में यात्री को मन बहलाने के लिए मिल जाते हैं, अन्यथा ये तो यात्रा के विघ्न भी सिद्ध हो सकते हैं। किसी कवि ने ठीक कहा है—

---

१. अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
चंक्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनेव नीयमाना यथान्धाः ॥ ५ ॥
न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ ६ ॥ (कठ० २।५, ६)

तमन्नाओं में उलझाया गया हूँ।
खिलौने देके बहलाया गया हूँ॥

ये खिलौने इसलिए हैं कि ये गम्भीर लम्बी जीवन-यात्रा में कुछ मनोरंजन का साधन बन सकें। परन्तु हमने तो बड़ी भारी दिव्य सम्पत्ति को प्राप्त करना है। इन मायावी साधनों में इतने न फँस जायें कि ये यात्रा में रुकावट बन जायें क्योंकि जो आनन्द मुक्ति में है, मोक्ष में है, वह इन खिलौनों में कहाँ? ऋग्वेद' ९।११३।११ में कहा है—

"जहाँ आनन्द, मोद, प्रमोद की स्थिति है, जहाँ मन की कामना पूरी होती है, वहाँ मुझे अमृत कर।" और इसी सूक्त के ९वें मन्त्र में कहा है—"जहाँ द्यौ के तीनों सुखमय चमकते हुए स्थानों में स्वच्छन्द विचरना होता है, जहाँ ज्योति ही ज्योति है, वहाँ मुझे अमृत कर।" और दसवें मन्त्र में कहा है—"जहाँ कामनाएँ रहतीं ही नहीं, जहाँ सदा तृप्ति रहती है वहाँ मुझे अमृत कर।" अब देखिए कि इस ऊँची मंजिल पर पहुँचना ईश्वर-कृपा है या खिलौनों में उलझे रहना?

मनुष्यत्व तथा मुमुक्षुत्व के साथ तीसरा दुर्लभ पदार्थ जो प्रभु-कृपा से मिलता है वह है साधु-सन्त, महात्मा, विद्वान् की संगति। जो सत्संग में रुचि नहीं रखता, जिसे केवल खेल-तमाशे, सिनेमा या इसी प्रकार के मनोरंजन के साधन ही प्रिय लगते हैं, जो सत्संग में जाना समय का व्यर्थ खोना समझते हैं, ऐसे लोगों पर भी प्रभु-कृपा नहीं होती, क्योंकि सत्संग भी एक दुर्लभ पदार्थ है और

---

१. यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तव माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥

प्रभु-कृपा ही से मिलता है। संगति से मनुष्य बनता भी है और बिगड़ता भी है। जिस प्रकार की संगति होगी, वैसे ही विचार मिलेंगे और मनुष्य फिर बनेगा भी वैसा ही—

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक, गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसो ही फल दीन।।

स्वाति नक्षत्र में वर्षा के जल की एक बूंद यदि कदली (केले) में चली जाये तो काफूर बन जाती है, वही जल यदि सीप में जा पड़े तो कीमती मोती बन जाता है और यदि सर्प के मुख में जा पहुँचे तो वही जल विष बन जाता है। जल तो एक ही है, परन्तु भिन्न-भिन्न संगति से कितना अन्तर पड़ जाता है! नदी का, नहर का अथवा कूप का जल यदि आम के वृक्ष की संगति करता है तो आम का मीठा रस बन जाता है, यदि लाल मिर्च के बीज की संगति में बैठता है तो अत्यन्त कड़वा बन जाता है। कुसंग मानव को बिगाड़ देता है और सत्संग सुधार देता है—

कर कुसंग चाहे कुशल, तुलसी यह अफसोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावण बसत पड़ोस।।

पञ्चतन्त्र में भी ऐसा ही कहा है—

असतां संगदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्।
दुर्योधनप्रसंगेन भीष्मो गोहरणे गतः।।

"असत् पुरुषों की संगति के दोष से सज्जनों में भी विकार भर जाते हैं। दुर्योधन की संगति से भीष्म गौ हरने गए थे।"

कितना बुरा परिणाम सामने आ जाता है कुसंगति का! भूलकर भी गन्दी पुस्तकों, बिगड़े हुए पुरुषों और मन में विकार लानेवाले चल-चित्रों की संगति कभी नहीं करनी चाहिये। यदि सत्संग में जाते हुए आलस्य प्रतीत हो, या सत्संग में जाने की अपेक्षा सोने की इच्छा हो या ताश खेलने और गप्पें हाँकने को चित्त चाहता हो तो समझ लो कि हमारे अन्दर तमोगुण प्रधान हो गया है, इसलिए हम प्रभु-कृपा के पात्र नहीं रहे। अच्छे धार्मिक चरित्र की ओर ले-जानेवाली पुस्तक पढ़ने की अपेक्षा लड़ाई-झगड़े या किस्से-कहानियों की पुस्तक पढ़ने की ओर अधिक रुचि हो तो समझ लो कि प्रभु-कृपा हमसे दूर है। गम्भीर, स्वच्छ, सुन्दर, एकता तथा मिलाप के विचार देने-वाले अखबारों, समाचार-पत्रों की अपेक्षा चटपटे लेखोंवाले, लड़ाई-झगड़े की ओर ले-जानेवाले समाचार-पत्रों के पढ़ने में अधिक मन प्रसन्न होता हो तो समझ लो हमारे अन्दर रजोगुण प्रधान है, जो मन की चञ्चलता का बहुत बढ़ा देगा और हमें प्रभु-कृपा से बहुत दूर ले जाएगा। अतएव साव-धान हो जाओ! देखो किधर जा रहे हो? सत्संग में या कहीं और? हमारे हाथ में अच्छी पुस्तक, अच्छा अखबार, अच्छा मासिक पत्र है जो हमें सुन्दर विचार देगा या ऐसा साधन हमारे पास है जो मन में विकार ले आयेगा? इसी प्रकार कोई पिक्चर, चल-चित्र देखने से पूर्व पूछताछ तो कर लो कि वह पिक्चर कहीं मन की मलिनता को बढ़ा तो नहीं देगी? इसे देखने के पश्चात् चित्त विकृत तो नहीं हो जायेगा?

साधु, सन्त, महात्मा और महापुरुषों की संगति इसलिए अच्छी मानी गई है कि उनके पास बैठने से चित्त में निर्मलता, मन में शान्ति और बुद्धि में स्वच्छता आती है। "बृहदारण्यवार्तिकम्" में

बतलाया है कि—

महानुभावसम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारणम् ।
अशुच्यपि पयः प्राप्य गंगां याति पवित्रताम् ।।

"महात्माओं के संग से किसकी उन्नति नहीं हुई (महात्माओं की संगति से सबकी उन्नति होती है) जैसे अपवित्र जल भी गंगा में मिलकर पवित्र हो जाता है।"

स्कन्दपुराण में कहा है—

बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचैः सह समागमात् ।
मध्यस्थैर्मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः ।।

(स्कन्दपुराण ४० । २८)

"नीचों के संग से पुरुषों की बुद्धि नष्ट हो जाती है, मध्यम श्रेणी के साथ उठने-बैठने से बुद्धि मध्यम स्थिति को प्राप्त होती है और श्रेष्ठ पुरुषों के साथ समागम होने से बुद्धि श्रेष्ठ होती है।

इसीलिए कबीर जी ने कहा है—

कबीर संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाय।
दुरमति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय।।

संसार-सागर से तरने के लिए सत्संग एक नौका है। इस माया की मोह-निशा को तोड़ने के लिए जिन अस्त्रों की भारी आवश्यकता समझी गई है उनमें से एक साधु-सन्त-महात्माओं की संगति भी है। कहा है—

संयम, सेवा, साधना, सत्पुरुषों का संग।
यह चारों तुरतैं करें, मोह-निशा को भंग ।।

लाहौर में एक प्रभु-प्रेमी छज्जु भक्त रहते थे। अपने चौबारे में सत्संगियों के साथ बैठे थे। ज्ञान-ध्यान की बातें चल रही थीं कि नीचे संगतरे बेचनेवाला आया और ऊँची आवाज़ से कहने लगा—"ले लो अच्छे संगतरे ! अच्छे संगतरे !"

छज्जु भक्त ने सत्संगतियों से पूछा—"भक्तो, यह नीचे से क्या आवाज़ आ रही है ?"

सत्संगी—"महाराज, संगतरे बेचनेवाला संगतरों का गुण बतला रहा है।"

छज्जु—"ठीक है, परन्तु कहता क्या है ? सुनो तो सही ध्यान से !"

इतने में फिर आवाज़ आई—"ले लो अच्छे संगतरे !"

सत्संगी—"भक्त जी, अच्छे संगतरे ही कह रहा है

छज्जु—"हाँ, यही कहता है। समझो ! क्या समझो ?—कि अच्छे संग-तरे, जो अच्छों की संगति करता है वह तर जाता है ! अच्छे-संग-तरे !"

निस्सन्देह अच्छे लोगों की संगति मानव को भारी लाभ पहुँचाती है और सत्संग तो भव से पार ही कर देता है। सत्संग के गूढ़ अर्थ भी हैं, और वे ये कि हर समय उस सत्-स्वरूप, सत्-चित्-आनन्द भगवान् को अपने अंग-संग अनुभव करते रहना। जब यह अनुभव परिपक्व हो जाता है, तब कोई विकार मन में आने नहीं पाता। वह सत्-स्वरूप प्रभु तो कभी हमसे पृथक् होता ही नहीं। यह तो भ्रम में पड़ा मानव ही है, जो अपने सदा के साथी को भुला देता है। उसकी संगति तो

कभी छूटती नहीं; छूट सकती भी नहीं; परन्तु यह कितना ग्राश्चर्य है कि दिन-रात, सोते-जागते, हर समय पास रहनेवाले की संगति से हम लाभ नहीं उठाते ! यह कितना बड़ा ग्रन्याय हम ग्रपने साथ कर रहे हैं ! कोई चक्षुहीन भी ग्रपने साथ ऐसा न करेगा, जैसा हमने ग्रपने साथ कर रखा है कि घर के ग्रन्दर ही घर के स्वामी को गुम किए बैठे हैं ग्रौर उसकी संगति से वंचित हो रहे हैं !

BLIND

परन्तु ऐसी संगति है दुर्लभ ग्रौर प्रभु-कृपा ही से मिलती है। कहा भी है—

सत् संगति दुर्लभ संसारा।
निमिष दण्ड भरि एकउ बारा।।

ग्रौर श्री नारद जी ने भी यही कहा है—

सत्संगो दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ।

—:०:—

दूसरा सत्संग

प्यारी माताग्रो तथा सज्जनो ! यह तो ग्राप पर विदित हो गया कि तीन दुर्लभ पदार्थ प्रभुकृपा से ही प्राप्त होते हैं, ग्रौर देखो तो सही, इस समय आपको ये तीनों—मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व, साधु-सन्त-महात्मा की संगति—प्राप्त हैं। ग्राप सब मनुष्य ही तो हैं ! जो मनुष्य का चोला न रखनेवाला हो, वह हाथ खड़ा कर दे ! (सब श्रोता हँस पड़े, किसी ने हाथ खड़ा न किया) तो आपको पहली दुर्लभ वस्तु प्राप्त है। प्यारे प्रभु की बात सुनने की चाह न होती तो ग्राप ग्रपने काम-काज को छोड़कर मेरे पास क्यों ग्राते ? इसलिए दूसरा दुर्लभ पदार्थ मुमुक्षुत्व भी ग्रापको प्राप्त है। ग्रौर सत्संग में तो ग्राप बैठे ही हैं। इन तीनों दुर्लभ पदार्थों के पास होते हुए ग्रब करना क्या ?

ग्राप मुझे यह बताइये कि इस समय ग्राप क्या सुनना चाहते हैं ?

एक श्रोता—महाराज, इस समय संसारी लोग भयंकर कष्ट-क्लेश में घिरे नाना यातनाएँ सहन कर रहे हैं। मानव के शरीर को सुखी करने, धन-सम्पत्ति बढ़ाने, स्वादु खाद्य पदार्थों को उपलब्ध करने के लिए जितनी योजनाएँ बनाई जाती हैं ग्रौर जितने अधिक प्रयत्न हो रहे हैं, जनता उतना ही ग्रधिक दुःखी होती चली जा रही है। चन्द्रलोक तथा दूसरे लोकों तक पहुँचने के भी यत्न हो रहे हैं ग्रौर पृथिवी के वासियों का शीघ्रता से नाश करनेवाले ग्रस्त्र-शस्त्र भी तैयार हो चुके हैं। हर ग्रोर भय ही भय फैल रहा है। निर्धन तो ग्रति दुःखी हैं ही, धनी लोग भी सुखी दिखाई नहीं

देते। तो महाराज! भगवान् की बनाई इस सृष्टि में क्या मानव सुखी नहीं हो सकता? क्या कोई ऐसा सरल, सीधा, सुन्दर साधन नहीं है जिसे प्रयोग में लाकर मानव कष्टों, दुःखों, रोगों तथा अन्य विपत्तियों से सुरक्षित रह सके? हम सब यही चाहते हैं कि आप हमें कोई ऐसा ही साधन बताने की कृपा करें जिससे दुःखों से बचते हुए अपनी जीवन-यात्रा को सफल बनाने के लिए जहाँ लौकिक व्यवहारों में कुशलतापूर्वक चलें, वहाँ आत्म-दर्शन पाने के लिए प्रभु-भक्ति में भी तत्पर रह सकें।

वक्ता—बहुत सुन्दर प्रश्न आपने पूछा है। ऐसा ही प्रसंग एक बार तब चला था, जब नैमिषारण्य तीर्थ में शौनकादि हज़ारों ऋषियों ने श्री सूत जी से पूछा था कि—

व्रतेन तपसा किं वा प्राप्यते वाञ्छितं फलम्।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामः कथयस्व महामुने॥

'हे महामुने! जिस व्रत और तप से मनोकामनायें पूर्ण होती हैं और फल प्राप्त होता है, ऐसे व्रत तथा तप को सुनने की हमारी इच्छा है, वह कथा कृपया कहिये।'

यह प्रश्न सुनकर सूत जी कहने लगे कि हे पूज्य ऋषि महानुभावो! आप सबने सारे ही प्राथियों के हित की बात पूछी है; ऐसा ही प्रश्न देवर्षि नारद ने भगवान् नारायण से किया था। वही आपसे कहता हूँ कि तब देवर्षि नारद और श्री लक्ष्मी-नारायण में क्या वार्तालाप हुआ था। इस कथा को श्री सत्यनारायण-व्रत-वार्ता कहते हैं। इसका वर्णन स्कन्दपुराण में रेवा खण्ड के अन्तिम पाँच अध्यायों में आता है। इन पाँच अध्यायों में १६२ श्लोक हैं। श्लोकों में यही बतलाया है कि श्री सत्यनारायण-व्रत-कथा सुनने तथा व्रत धारण करने से दुःखी ब्राह्मण सुखी हो गया। एक लकड़हारा

धन तथा पुत्र से सम्पन्न हो गया और अन्त में स्वर्ग भी जा पहुँचा। एक राजा तथा एक वणिक् को पुत्रलाभ हुआ। व्रत को भूल जाने से वणिक् कष्ट में भी पड़ गया, फिर व्रत करने पर कष्ट दूर हो गया। ऐसी ही और भी बातें लिखी हैं, परन्तु वह व्रत-तप और कथा क्या है, इसका वर्णन कहीं भी नहीं।

अब ध्यानपूर्वक सुनिये कि स्कन्दपुराण के इन पाँचों अध्यायों का तात्पर्य क्या है! योगी नारद जी विविध लोकों में घूमते हुए मर्त्यलोक (इस पृथिवीलोक) में एक दिन पहुँचे। इस लोक के मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों को श्री नारद जी ने बहुत दुःखी देखा। अपने कर्मों द्वारा अनेक प्रकार से पीड़ित-दुःखित जनता को देखकर उनके हृदय पर भारी आघात पहुँचा। 'क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है जिससे इनके तीनों प्रकार के ताप शान्त हो सकें और दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति हो सके?' ऐसा वे विचार करने लगे, और यह सोचकर कि इस समस्या का समाधान विष्णुलोक में जाकर ही हो सकेगा, योगी नारद विष्णुलोक में जा पहुँचे। वहाँ से सीधे भगवान् नारायण के स्थान पर जा ठहरे और नारायण का स्तुति-गान करने लगे—प्रभो! आप मन और वाणी से अतीत हैं, निर्गुण हैं, सबके आदिभूत हैं, भक्तों के दुःख का नाश करनेवाले हैं। आपको नमस्कार हो!

भगवान् बोले—किसलिए इधर आना हो गया? मन में क्या अभिलाषा है? कहो तो सही!

नारद जी कहने लगे—अभी मैं मृत्युलोक से आ रहा हूँ न, वहाँ मनुष्य पापकर्म-वश नाना योनियों में जन्म लेकर भयंकर क्लेश पा रहे हैं। हे नाथ! उनके वे सारे क्लेश सहज में ही कैसे दूर

हो सकते हैं, यही पूछने के लिए आपके पास आया हूँ। कृपया वह उपाय बतलाइये जिससे कलिकाल में दुःख भोगनेवालों का छुटकारा हो सके।

भगवान् नारायण ने उत्तर में कहा—तुमनें सबके हित की बड़ी अच्छी बात पूछी है। मोह ही सब दुःखों तथा पापों का मूल है। इस मोह से मुक्त होने का उपाय तुम्हें बताता हूँ, सुनो! एक अत्यन्त पवित्र व्रत है जिसका नाम 'सत्यनारायण-व्रत' है। इस व्रत का सम्यक् रूप से अनुष्ठान किए जाने पर लोक में सुख भोगकर मनुष्य परलोक में मोक्ष को प्राप्त करता है। इस व्रत से दुःख-शोकादि का नाश होता है, धन-धान्य की वृद्धि होती है, सौभाग्य बढ़ता है, सन्तान मिलती है और सर्वत्र विजय मिलती है। मनुष्य भक्ति-श्रद्धा के साथ जिस किसी भी दिन यह व्रत कर सकता है। व्रत करके सबके साथ (घर के लोगों के साथ) सत्यनारायण की कथा सुनकर ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार करने से मनुष्य की इच्छा निश्चय ही पूरी होती है। कलियुग में तो यह सत्य-नारायण-व्रत सारी इच्छाओं के पूरी करने का अमोघ उपाय है। जिस समय इस व्रत का पृथिवी में प्रचार होगा, उसी समय मनुष्य के समस्त दुःख नष्ट हो जायेंगे।

योगी नारद तथा भगवान् नारायण की यह बात सुनाकर सूत जी ने शौनकादि ऋषियों से कहा—'हे महानुभावो! सुन लिया आपने वह सरल उपाय, जो तीनों तापों के मिटानेवाला है? तब सूत जी ने कुछ गाथायें सुनानी शुरू कीं, जिनमें यह बतलाया है कि सत्यनारायण-व्रत करने से किन-किनको लाभ हुआ; और जो इस व्रत को भूल गए उन्होंने अकथनीय कष्ट उठाये और उन्होंने अपनी भूल का सुधार करके सत्यनारायण-व्रत फिर धारण कर लिया तो उनके काले दिन अच्छे

दिनों में बदल गये।

सत्यनारायण-व्रत क्या है, कैसे यह व्रत लिया जाता है, यह तप क्या और कैसे किया जाता है तथा वह कथा कौन-सी है जिसे सत्यनारायण-व्रत-कथा कहा जाता है? स्कन्दपुराण के रेवा खण्ड के अन्तिम पाँच अध्यायों में तो व्रत, तप तथा कथा का माहात्म्य वर्णन किया गया है, परन्तु स्कन्द-पुराण के स्थल-स्थल पर परमात्मा की भक्ति (जिसे शिव-भक्ति, विष्णु-भक्ति, नारायण-भक्ति के नाम से पुकारा गया है, तथा वेदानुसार आचरण करने) का आदेश पाया जाता है। इन बातों से प्रकट हो जाता है कि वह व्रत-तप और कथा क्या है?

श्रोता—महाराज! हम तो वही व्रत, तप तथा कथा सुनने के इच्छुक हैं जिनसे संसारी जीव सुखी हो सकें।

वक्ता—ठीक है, अब कल यही प्रसंग चलेगा, जिससे आप पर प्रकट हो सके कि श्री सत्यनारायण की कथा क्या है?

□

तीसरा सत्संग

मेरी अच्छी माताओ तथा सज्जनो !

श्री सत्यनारायण-व्रत-कथा के प्रसंग में यह बतलाया जा चुका है कि योगी नारद तथा भगवान् नारायण का संवाद नैमिषारण्य तीर्थ में हुआ था। स्कन्दपुराण के आरम्भ ही में लिखा है कि नैमिषारण्य तीर्थ सारे तीर्थों में उत्तम और समस्त क्षेत्रों में श्रेष्ठ है। इसलिए सबसे पूर्व यह देखना चाहिए कि यह नैमिषारण्य तीर्थ है कहाँ, और तीर्थ कहते किसे हैं। इसका निर्णय होने से श्री सत्य-नारायण-व्रत की बात भी भली-भाँति समझ में आ सकेगी।

तीर्थ किसे कहते हैं ?

तीर्थ तारने[1] वाले को कहते हैं, जो भव से पार कर दे। माता को सबसे पहला तीर्थ कहा गया है, जो भव से पार ले-जाने के लिए शरीर-रूपी नौका देती है और पवित्र विचारों के चप्पू देकर मोक्ष के मार्ग पर डाल देती है। स्कन्दपुराण में माता के सम्बन्ध में मेधातिथि गौतम का यह आदेश है कि—

१. तरन्ति येन यत्र वा तत् तीर्थम्। गुरुर्यज्ञः पुरुषार्थो मन्त्रो जलाशयो वा॥ उणादि (२।७)
जो तार देता है या जहाँ से तरते हैं उसे तीर्थ कहते हैं। गुरु-यज्ञ, पुरुषार्थ-मन्त्र और जलाशय को भी तीर्थ कहते हैं।

नास्ति मात्रा समं तीर्थं नास्ति मात्रा समा गतिः।
नास्ति मात्रा समं त्राणं नास्ति मात्रा समा प्रपा॥

"माता के समान कोई तीर्थ नहीं, माता के समान कोई गति नहीं, माता के समान कोई रक्षक नहीं और माता के समान कोई प्याऊ नहीं।"

माता सचमुच तीर्थ है। तीर्थ में निष्पाप होकर रहने की आज्ञा है, इसलिए पापी से पापी पुत्र भी अपनी माता के सामने कोई पाप नहीं करता। परमात्मा को भी माता कहा गया है। जब वह सच्ची माता हर समय हमारे अंग-संग रहती है तब पाप कैसे कर सकेंगे?

परन्तु भारत में तो कितने ही विशेष स्थानों को तीर्थ कहा गया है, जैसे प्रयाग, कुरुक्षेत्र, हरद्वार, अवन्ती, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, अमरावती, सरस्वती, समुद्र-संगम, बदरिकाश्रम, केदार, पुष्कर, नैमिषारण्य, गंगोत्री इत्यादि अनेक तीर्थों के नाम सुने जाते हैं। इन स्थानों को भी तीर्थ इसलिए कहा जाने लगा, क्योंकि वहाँ भव से तरने के उपाय तथा साधन बतलानेवाले गुरुजन रहा करते थे। समय के प्रभाव ने अब इनको तीर्थ नहीं रहने दिया, फिर भी सच्चे जिज्ञासुओं के लिए अब भी पथ-प्रदर्शक मिल ही जाते हैं।

और जिन स्थानों पर सहस्रों वर्षों से तप हो रहा है, वहाँ का वातावरण अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक सात्त्विक है। इसीलिए कितने ही ऐसे स्थानों पर पहुँचकर मन स्वयमेव एकाग्र होने लगता है। ऐसे स्थान तीर्थ ही समझे जाते रहेंगे।

हाँ, कुछ तीर्थ ऐसे हैं जो अब भी सच्चे अर्थों में तीर्थ हैं, और ऐसे तीर्थ मनुष्य के अपने ही

शरीर के अन्दर हैं। जैसे कहा भी है—

मन मथुरा दिल द्वारका, काया काशी जान।
दस द्वारे का देहरा, ता में जोत पहचान॥

प्रयाग शरीर में वह स्थान है जो दोनों भवों के मध्य में है। जहाँ गंगा, यमुना, सरस्वती (इडा, पिंगला, सुषुम्णा) तीनों नदियों का संगम है, वहाँ ध्यान द्वारा स्नान करने से निश्चित पवित्रता मिलती है।

स्कन्दपुराण के काशी खण्ड में मानस-तीर्थों का वर्णन आता है। लोपामुद्रा के पूछने पर अगस्त्य ऋषि ने मानस-तीर्थ बताते हुए कहा—

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे!
येषु सम्यङ् नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्॥

"हे निष्पापे! मैं मानस-तीर्थों का वर्णन करता हूँ। सुनो! इन तीर्थों में स्नान करके मनुष्य परम गति को प्राप्त होता है।"

अब उन तीर्थों के नाम सुनिए जो अगस्त्य जी ने बतलाये—

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्व-भूत-दयातीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥

ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धमनसः परा॥
न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धः मनोमलः॥ (काशी खण्ड ६, २९ से ३३)

"सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रिय-संयम तीर्थ है, सब प्राणियों के प्रति दया भी तीर्थ है। सरलता, दान, मन का मदन, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, मीठा-प्रिय बोलना भी तीर्थ है। ज्ञान, धृति और तपस्या, ये सब तीर्थ हैं। इनमें ब्रह्मचर्य परम तीर्थ है, मन की परम विशुद्धि तीर्थों का भी तीर्थ है। जल में डुबकी लगाने का नाम ही स्नान नहीं है; जिसने इन्द्रिय-संयमरूपी स्नान किया है, वही स्नान है और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।"

कितने सुन्दर तीर्थों का वर्णन अगस्त्य मुनि जी ने किया है! आगे चलकर मुनि जी और भी स्पष्ट करते हैं और कहते हैं कि 'शरीर का मैल उतारने से ही मनुष्य निर्मल नहीं होता, मन के मैल को निकाल देने पर ही भीतर से सुनिर्मल होता है।' इसलिए यह कहा है कि मन ही परम पवित्र तीर्थों का भी तीर्थ है।

मन का मैल क्या है? इस समस्या का समाधान भी अगस्त्य मुनि जी ने कर दिया है। वे कहते हैं कि—

विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते।
तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्॥

"विषयों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष, इत्यादि—में अत्यन्त राग ही मन का मैल है और विषयों से वैराग्य को ही निर्मलता कहते हैं।" मन निर्मल हुआ और अन्तःकरण के दर्पण में प्रियतम की सुन्दर छवि दिखाई देने लगी। तीर्थ-स्थान का प्रयोजन भी यही है, तभी तो कबीर पुकार उठा था—

कबीरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा-नीर।
पाछे-पाछे हरि फिरे, कहत कबीर कबीर॥

अब थोड़ा विचार कीजिए—ये जितने मानस-तीर्थ गिनाए गए हैं ये सब योग-दर्शन के यम-नियमों के ठीक अनुकूल हैं या नहीं?

सारे दुःखों से छूटने और परम आनन्द के भण्डार के पास पहुँचने के लिए सबसे पहली आवश्यक वात यही है कि साधक यम-नियमों—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान—के तीर्थ में स्नान करे। यम-नियमों को अपने जीवन में ढालने से चित्त की समस्त वृत्तियों का अवरोध होने लगता है, मन की चंचलता मिटने लगती है और एकाग्रता का तार बँध जाता है। जब साधक मन-मन्दिर के अन्दर बैठ जाता है तो समझो, वह नैमिषारण्य तीर्थ ही में पहुँच जाता है। इस पवित्र तीर्थ में पहुँचकर उसे ध्यान-अवस्था का स्वाद आने लगता है। स्कन्दपुराण के काशी खण्ड ही में अगस्त्य मुनि यह बतलाते हैं कि—

ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥ (६।४१)

"ध्यान से पवित्र तथा ज्ञान-रूपी जल से भरे हुए राग-द्वेषमय मल को दूर करनेवाले मानस-तीर्थ में जो व्यक्ति स्नान करता है वह उत्तम (परम) गति को प्राप्त होता है।"

'नैमिषारण्य' कहते हैं उस वन-जंगल को जहाँ केवल पलक झपकते ही आत्मदर्शन होते हैं। जब मन-मन्दिर में साधक की वृत्ति निरुद्ध हो जाती है, तब केवल पलक झपकने के अति-अल्प काल ही में सत्य-नारायण के दर्शन हो जाते हैं। यही है वह नैमिषारण्य (हृदयरूपी जंगल) जहाँ योगी नारद पहुँच गए थे। वे मृत्यु-लोक के वासियों को अत्यन्त दुःखी देख गए थे। उनके दुःख दूर करने का वे उपाय सोच रहे थे, पपन्तु उन्हें कुछ सूझा नहीं; तब उन्हें ध्यान-अवस्था के जंगल में पहुँचने का विचार आया कि वहाँ सारे जीव-जन्तुओं में, सर्वत्र व्याप्त नारायण के दर्शन होते ही उनसे कोई सरल उपाय पूछूँगा तो वे प्रभु अवश्य उपाय बतलायेंगे। मेरी यही बात सुनकर संशय हो सकता है—क्या भगवान् अपने भक्त से बातें करते हैं? इसका उत्तर यह है कि खूब बातें करते हैं, और बड़े प्यार से करते हैं। एक सच्चे भक्त और साधक की अभिलाषा होती भी यही है। वेद ऐसे साधक की मनोकामना को प्रकट करने के लिए कहते हैं—

ओं उत स्वया तन्वा संवदे तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभिख्यम्॥ ऋ० मं० ७ सूक्त ८६ मं० २॥

'हे सबसे श्रेष्ठ सुन्दर मनमोहक प्यारे! वह दिन कब चढ़ेगा, जब मैं आत्मा से तेरे साथ बातचीत करूँगा? कब मैं तेरा अन्तरंग बनूँगा? वह शुभ घड़ी कौन-सी होगी जब तू प्रसन्न होकर मेरी भेंट स्वीकार करेगा, और कब मैं अपने पवित्र-निरुद्ध मन से तेरा दर्शन पाऊँगा? इस मन्त्र में

चार अभिलाषाएँ बतलाई हैं जो एक सच्चे प्रभु-प्रेमी साधक-हृदय में सहसा उत्पन्न हो जाती हैं : (१) सु-मन से प्रभु-दर्शन पाने की, (२) प्यारे के चरणों में अपनी भेंट चढ़ाने की, (३) अपने सुन्दर प्रियतम का अन्तरंग बनने की, और (४) अपने वरुण प्रभु से आत्मा द्वारा संवाद करने की। योगी नारद इन अभिलाषाओं से खाली नहीं था। वह भी दर्शन पाकर, भेंट चढ़ाना चाहता है, फिर प्रभु के साथ नितान्त एकान्त में बैठकर उससे कुछ पूछना चाहता है। केवल अपने स्वार्थ की बात नहीं, अपितु दुःखी दुनिया को सुखी करने की कामना लेकर वह उपाय पूछने का इच्छुक है, जिस उपाय से चिन्ताओं, पीड़ाओं, कष्टों तथा दुःखों के अंगारों में जलती दुनिया सुख का श्वास ले सके और मानसिक शान्ति को उपलब्ध कर सके। प्रभु-प्रेमी तो अपनी चिन्ता करते ही नहीं; वे तो दूसरों ही के लिए चिन्तित होते हैं—

अपनी फिक्र न कुछ करें प्रभु-प्रेम के दास।
सूई नंगी खुद रहे और सबका सिए लिबास॥

योगी नारद भी यही पवित्र अभिलाषा लेकर जा पहुँचा नैमिषारण्य तीर्थ[1] में, जहाँ श्री सत्यनारायण के दर्शन होते हैं; और जब नारायण ने देखा कि बड़ी पवित्र अभिलाषा लेकर नारद जैसा योगी साधक आ गया है, तब नारायण ने दुःखी दुनिया को सुखी करने का यह सरल उपाय बतलाया कि "सब लोग सत्यनारायण-व्रत धारण करें।"

१. वास्तविक तीर्थ तो हृदय में है, वैसे आजकल इसे नीमषार कहा जाता है जो सीतापुर जिले में है। स्कन्दपुराण खं० (—) १७॥ (१) ५-१२॥ (३) २-११।

इनसे उनके "दुःखशोकादिशमनम्" (१) दुःख, शोक, बन्धन, दासता, पीड़ा, निर्धनता इत्यादि सब दूर हो जायेंगे और "धनधान्य-प्रवर्धनम्" (२) गरीबी, अर्थ-संकट, बेकारी, घाटा, सब-कुछ दूर होकर भक्त धन-सम्पत्ति, वैभव, ऐश्वर्य से भरपूर हो जायेगा और यह व्रत "भयात्प्रच्येत्" (३) कायरों-डरपोकों को भय से भी तो मुक्त कर देगा; तथा—(४) "बद्धो मुच्यते बन्धनात्" नाना प्रकार के बन्धनों में बँधे हुए रोग-बन्धन, मोह-बन्धन, माया-बन्धन, संशय-बन्धन, अज्ञान-अविद्या-बन्धन तथा और अनेक प्रकार के बन्धनों में से लोगों को यह व्रत तत्काल छुड़ा देगा; और इस व्रत से सर्वत्र विजय भी प्राप्त हो जाएगी। लोक की ये सारी बातें कहकर अन्त में श्री नारायण कहते हैं कि "परत्र मोक्षमाप्नुयात् अन्ते सत्यपुरं व्रजेत्" फिर मोक्ष की भी प्राप्ति यह व्रत करा देगा।

व्रत किसे कहते हैं ?

किसी नियम को धारण करके उस पर कटिबद्ध हो जाने का नाम व्रत लेना है। किसी एक विशेष बात के लिए उपासना करना भी व्रत कहलाता है, परन्तु व्रत का अर्थ केवल उपवास ही नहीं है, यह तो इस महान् शब्द को बहुत संकुचित कर देना है। जब बालक गुरु के समीप जाकर गुरु से दीक्षा लेता है तो वह ब्रह्मचारी तथा विद्यार्थी बनने का व्रत लेता है, और इस व्रत का दिल-जान से पालन करता है। जब ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए आता है, तो ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचारिणी, दोनों गृहस्थ बनने का व्रत लेकर एक-दूसरे को वर लेते हैं; ये दोनों अपने गृहस्थाश्रम के व्रत को पूरे तप-त्याग से निभाते हैं। जब एक साधक अपने गुरु से आदेश लेकर कोई योग-अनुष्ठान

अथवा मन्त्र-जप-अनुष्ठान करता है तो वह व्रती बनकर सारा कार्य करता है। जब राज्याधिकारी, प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति, मन्त्री, जज इत्यादि बनते हैं, तब वे भी अपने कर्त्तव्य को पूरा करने का व्रत लेते हैं शपथ लेते हैं, सौगन्ध खाते हैं। इसी प्रकार से यह सत्यनारायण-व्रत है। सत्यनारायण के समीप रहने, पग-पग पर उसी की छाया में रहने, उसी के दर्शन पाने के लिए यत्नशील रहने और उसी के लिए जीने और उसी के लिए मरने का व्रत ले लिया जाता है। जैसे पति-पत्नी एक-दूसरे को वरकर व्रती बनते हैं, ऐसे ही भक्त के लिए आवश्यक होता है कि वह सत्यनारायण को वर कर व्रती बने, तभी सत्यनारायण-व्रत का तात्पर्य पूर्ण हो सकेगा।

व्रत धारण करनेवाले के लिए कुछ विशेष नियम होते हैं। भक्त अथवा साधक या साधिका व्रत ले कि—"मैं आज से तपस्या का जीवन व्यतीत करूँगा या करूंगी। इन्द्रियों की तृप्ति के लिए कोई कुकर्म नहीं करूँगा। सदा शुद्ध-पवित्र रहने का स्वभाव बना लूंगा। मेरा आहार, विचार, आचार, व्यवहार सदा शुद्ध-पवित्र और सात्विक रहेगा। अब मेरी वाणी मीठा ही बोलेगी, मेरा मन सत्य से भरपूर रहेगा। मैं यथाशक्ति मन, वचन, कर्म से सबका कल्याण करने का यत्न करूँगा। चलते-फिरते, जागते-सोते भगवान् सत्यनारायण के पवित्र नाम ओ३म् ही का जाप करता रहूँगा। जीवन-निर्वाह के लिए सावधानी से धन-अन्न उपार्जन करूँगा।"

इससे पूर्व मानस-तीर्थों का वर्णन आ चुका है। इन तीर्थों में स्नान करना आवश्यक है और इन मानस-तीर्थों में आप अपने घर में बैठ स्नान कर सकते हैं। तब सत्यनारायण-व्रत धारण कीजिए और व्रत धारण करने के पश्चात् इस व्रत को निभाने तथा पालन करने के लिए तपस्या कीजिए,

शारीरिक तथा मानसिक साधना कीजिए। जो व्रत ले लिया है उसपर कटिबद्ध हो जाइए—फिर चाहे गर्मी सहन करनी पड़े या सर्दी, दुःख आए या सुख, काँटों पर चलना हो या मखमली बिछौने पर सोना हो, अपने व्रत[1] को पूरा करते चलिए।

ऐसे व्रती और तपस्वी ही श्री सत्यनारायण की कथा सुनने के अधिकारी हैं, और वही कथा को समझ भी सकेंगे।

---

१. व्रत के सम्बन्ध में विद्वान् व्यक्तियों ने भी बताया है कि—

व्रतमिति कर्म नाम निवृत्तिकर्म वारयतीति सतः।
इदमपीतरद् व्रतमेतस्मादेव वृणोति सतः॥
अन्नमपि व्रतमुच्यते सदा वृणोतीति शरीरम्।

"बुरे कर्मों से परे हटा देता है, इसलिए इसे व्रत कहते हैं; स्वीकार, ग्रहण किया जाता है, इसलिए व्रत कहते हैं; अन्न भी इसके अर्थ हैं क्योंकि यह शरीर का आवरण करता है।"

चौथा सत्संग

मेरी प्यारी माताश्रो तथा सज्जनो !

श्री सत्यनारायण की कथा शुरू करने से पहले यह जानना ग्रावश्यक है कि जिसकी कथा सुनने के लिए हम इस सत्संग में ग्राए हैं, वह सत्यनारायण है कौन ग्रौर क्या है ? तो ग्राज पहले यही प्रसंग ग्रारम्भ होता है—

सत् शब्द 'ग्रस् भुवि' इस धातु से सिद्ध होता है 'यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते तत्सद् ब्रह्म'—"जो सदा वर्तमान ग्रर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालों में जिसका बाध न हो उस परमेश्वर को 'सत्' कहते हैं।"[1]

जिज्ञासु—महाराज ! क्षमा चाहता हूँ, यहाँ एक शंका सामने ग्रा गई है।

वक्ता—कहो, मेरे प्यारे ! परन्तु तुम्हारे कहने से पूर्व ही तुम्हारे मन की बात समझ ली गई है। लो सुनो ! आपको यही शंका उत्पन्न हुई है न कि सत्य तो तीन पदार्थ सुने जाते हैं—ईश्वर, जीव, प्रकृति—परन्तु यहाँ ईश्वर को ही सत् क्यों कहा गया ? क्यों प्यारे, यही शंका है न ?

जिज्ञासु—हाँ महाराज ! ठीक जान लिया ग्रापने।

१. सत्यार्थप्रकाश—प्रथम समुल्लास।

वक्ता—ग्रच्छा तो इसका समाधान भी यहीं होना उचित है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि तीन पदार्थ सत् ग्रौर ग्रनादि हैं। फिर यहाँ ईश्वर को ही सत् क्यों कहा ? वह इसलिए कि केवल प्रभु परमात्मा ही ऐसा सत् पदार्थ है, जो कभी किसी बन्धन में नहीं ग्राता। जीव ग्रौर प्रकृति हैं तो सत् परन्तु दोनों बन्धन में ग्रा जाते हैं। प्रकृति प्रभु-ग्राज्ञा से विकृत होकर नाना रूपों के बन्धन में ग्रा जाती है; जीव इन रूपों में कर्मानुसार बँध भी जाता है ग्रौर फिर छूट भी जाता है। केवल परमात्मा ही एक ऐसा सत् है जो सदा एक-रस रहता है, कभी किसी ग्रवस्था में बन्धन में ग्राता ही नहीं; वह काल के ऊपर, ग्रवस्था से ऊपर, तीनों प्रकार के गुणों से ऊपर रहकर सबके ग्रन्दर ग्रौर सबके बाहिर रहता है। ग्रतएव वह सबसे ऊँचा ग्रौर पराकाष्ठा का सत् है। जीव-प्रकृति भी सत् तो हैं परन्तु बन्धन में ग्राने के कारण यहाँ परमेश्वर के साथ उनकी गणना नहीं की गई।

प्रलय हो या सृष्टि, रात हो ग्रथवा दिन, गर्मी हो या शीत—वह परमात्मा सदा एकरस रहता है, न जन्मता है, न मरता है। विश्व-कल्याण के लिए विष्णु बन सब पर दृष्टि रखता है। उसी सत् ब्रह्म को विद्वान् लोग ग्रनेक नामों से पुकारते हैं। वेद ने भी कहा है—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। (ऋ० १। १६४। ४६)

"एक सत् (स्वरूप) को ऋषि ग्रनेक प्रकार से कहते हैं—यम, ग्रग्नि, मातरिश्वा।" ग्रौर इसी मन्त्र के पूर्व-भाग में इसी सत् को इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान् के नाम से पुकारा है ग्रौर ये सारे विशेषण एक सत् परमात्मा ही के हो सकते हैं। क्यों प्यारे ! संशय जाता रहा ?

जिज्ञासु—हाँ महाराज, ग्रा गया समझ में।

वक्ता—तो अब सत् के पश्चात् 'नारायण' शब्द आता है। नारायण उसी सत् ही का विशेषण है। नारायण के बड़े सुन्दर अर्थ भगवान् मनु ने किए हैं। लिखते हैं—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता तदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ (मनु० १। १०)

"जल और जीवों का नाम नारा है; वह अयन अर्थात् निवास-स्थान है जिसका; इसलिए सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम नारायण है।"

यह सारा संसार प्राण-मय है और यह नारायण सर्वत्र प्राणधारियों में तथा हर प्रकार के जलों में विराजमान है। अज्ञानी कहता है, यह कहीं नहीं है। ज्ञानी कहता है, वह कहाँ नहीं है! देखने-वाली आँखें होनी चाहिएँ, फिर उसके दर्शन हर परमाणु में होते हैं। वह हर स्थान, हर चीज में विराजमान जो हुआ। एक कवि ने ठीक कहा है—

दीदारे-शश-जहाँ[1] है कोई दीदावर तो[2] हो।
जलवा[3] कहाँ नहीं कोई अहले-नजर[4] तो हो॥

तो सत्य नारायण कौन हुआ? सकल जगत् के अणु-अणु में, प्राणिमात्र में, जल के कण-कण में व्यापक परमात्मा को सत्यनारायण कहते हैं। उसी सत्यनारायण पर 'पूर्ण विश्वास', 'अटूट श्रद्धा' रखने और उसी की 'अनन्य-भक्ति' करने का व्रत लेने का आदेश सत्यनारायण-व्रत-कथा में दिया गया है।

१. अखिल विश्व के दर्शन, २. देखनेवाला, ३. प्रकाश, ४. दृष्टि रखनेवाला।

'पूर्ण विश्वास' का प्रयोजन क्या है?

प्रयोजन यह है कि परमात्मा की सारी आज्ञाओं का पालन करते हुए, उसके आदेशानुसार जीवन व्यतीत करते हुए, प्रभु की पवित्र वाणी वेद का नित्य स्वाध्याय और तदनुकूल आचरण करते हुए, उसकी कृपा का पात्र बनना और अपने पुरुषार्थ का जैसा भी फल मिले उसपर सन्तुष्ट रहना और यह विश्वास रखना कि परमात्मा हमारी माता है और हमारे ही कल्याण के लिए यह सृष्टि रचती है, हमें मानव-चोला देती है और हमारे ही लोक तथा परलोक को सुधारने के लिए हर प्रकार का दुःख अथवा सुख देती है। वह माँ अपने बच्चे-बच्चियों पर कभी "भीषणं भीषणानाम्"—भीषण से भीषण रूप में कृपा करती है और कभी "सुन्दरं सुन्दरानाम्"—सुन्दर से सुन्दर रूप में कृपा करती है। पूर्ण विश्वासी का यही कर्त्तव्य है कि वह भयंकर से भयंकर परिस्थिति में भी अपने विश्वास को डाँवाडोल न होने दे, निर्बल न होने दे, संशय में न पड़ने दे; संशय आया और नाश साथ लाया। इस बात को कदापि न भूलना कि जितने सुख-दुःख आते हैं, ये सब अपने ही कर्मों के परिणाम होते हैं। कम करते समय तो मानव भविष्य का ध्यान नहीं करता, आँखें मींच लेता है और तात्कालिक लाभ, क्षणिक इन्द्रिय-सुख को प्राप्त करने के लिए कुकर्म कर बैठता है और अपने-आपको धोखा देने के लिए कह देता है कि—

अब तो आराम से गुजरती है।
आकबत[1] की खबर खुदा जाने॥

१. अगली दुनिया—प्रलय

परन्तु जब उन कुकर्मों का परिणाम इसी जन्म में, अगले जन्म में या अनेक जन्मों के पश्चात् सामने आता है तो परमात्मा ही को भला-बुरा कहने को तत्पर हो जाता है, परन्तु पूर्ण विश्वासी ऐसा नहीं करता; वह पूरी प्रसन्नता से भोगता है, रोता नहीं, शिकायत नहीं करता। जिस प्रकार का रोग मन अथवा शरीर को लगाया था, अब उसकी चिकित्सा भी तो वैसी ही होनी है। यदि मरहम लगाने की आवश्यकता होती है तो मरहम लगती है, यदि चीड़-फाड़--ऑपरेशन-के बिना गन्दा मवाद नहीं निकल सकता, तो फिर ऑपरेशन ही होता है, तब घबराना क्यों? वह माँ हमारी परम वैद्या भी है; उससे बड़ा डॉक्टर-चिकित्सक और कोई है नहीं; अपने-आपको उसी के हवाले (अर्पण) कर दो। सच्चे विश्वास की नाव पर सवार मीरा ने क्या कह नहीं दिया था—

औषध खाऊँ न बूटी खाऊँ ना कोई वैद्य बुलाऊँ।
पूर्ण वैद्य मिले अविनाशी ताहि को नब्ज दिखाऊँ॥

भगवान् पर पूर्ण विश्वास के अर्थ यही हैं कि अपनी सामर्थ्य तथा बुद्धि के अनुसार भरसक प्रयत्न करने पर जैसा परिणाम निकले उसका प्रसन्नता से स्वागत किया जाये; पता नहीं जिस परिणाम को हम बुरा समझ रहे हैं, वही हमारा भला करनेवाला हो। एक बड़ी विख्यात कथा सुनाता हूँ—

एक राजा अपने मन्त्री के साथ पर्यटन तथा शिकार के लिए जंगल में निकल गया। चलते-चलते काँटोंवाली झाड़ी में राजा का वस्त्र उलझ गया। हाथ से वस्त्र को बचाने का यत्न किया तो उँगली में घाव आ गया, रक्त बहने लगा। वज़ीर ने पट्टी बाँधते हुए कहा—"कोई बात नहीं, प्रभु

जो करते हैं अच्छा ही करते हैं।" यह बात सुनकर राजा को क्रोध-सा आ गया—अरे! मेरी तो उँगली कट गई, इतना रक्त बह गया, पीड़ा तंग कर रही है और यह कैसा मन्त्री है जो कह रहा है कि प्रभु जो करता है अच्छा ही करता है? मैं तो ऐसे मन्त्री के बिना ही अच्छा हूँ—"मन्त्री, आप कृपया जाइये। मैं ऐसे साथ से अकेला ही अच्छा।" मन्त्री ने उत्तर में कहा,—"जो आज्ञा आपकी, मैं अपना रास्ता लेता हूँ।" राजा अकेला ही चल पड़ा। चलते-चलते राजा दूसरे राजा के राज्य में जा पहुँचा। वहाँ उस दिन देवी पर मनुष्यों की बलि चढ़ाई जानेवाली थी। सिपाही किसी पुरुष की तलाश में थे। खोजते-खोजते सिपाहियों की दृष्टि राजा पर पड़ी—सुन्दर है, शरीर अच्छा है, देवी इसकी बलि से बहुत प्रसन्न होगी। राजा को सिपाही मन्दिर में ले गये। बलि चढ़ाने से पूर्व जब राजा को स्नान कराया जाने लगा तो पुजारी की आँखों ने राजा की कटी उँगली को देखा और पुकार उठा, "अरे! यह तो अंग-भंग है, इसकी बलि नहीं चढ़ाई जा सकती।" राजा को छोड़ दिया गया। राजा अपनी नगरी की ओर आ रहा था, विचार भी कर रहा था कि मन्त्री ने ठीक ही तो कहा था कि प्रभु जो करते हैं हमारे कल्याण के लिए ही करते हैं। यदि हाथ पर घाव न आ गया होता तो आज यमदूत ले ही गये थे, इस घाव ही ने बचा दिया। ऐसे मन्त्री का तो मान होना चाहिए, न कि उसे दण्ड मिलना चाहिए। नगरी में पहुँचने से पूर्व राजा मन्त्री की खोज करने लगा और एक नन्ही-सी कुटिया में मन्त्री को बैठे देखा। उसे अपने साथ लेकर राजा अपनी नगरी में जा पहुँचा। राजा ने मन्त्री से कहा—"आपने तो मेरी उँगली कटने पर बड़े पते की और मर्म की बात कही थी, मैं ही अल्प-बुद्धि समझ न पाया। इसी घाव के कारण मैं मौत के मुंह से निकल आया हूँ।

परन्तु मेरे अच्छे मन्त्री ! यह तो बतलाओ कि मेरे घायल होनें में तो मेरा भला हुआ, परन्तु मैंने आप जैसे तत्त्वदर्शी का अपमान किया और आपको निकाल दिया, इसमें प्रभु ने आपकी कौन-सी भलाई देखी ?"

मन्त्री ने मुस्कराते हुए कहा—"यह तो और भी अधिक अच्छा हुआ। यदि आप मुझे दुत्कार न देते तो मैंने आपके साथ ही रहना था। तब सिपाही मुझे भी पकड़कर ले जाते। आप तो घायल होने के कारण छूट जाते, परन्तु मैं तो अंग-भंग नहीं था। तब वे मेरी ही बलि चढ़ा देते। मेरे ऊपर तो प्रभु ने विशेष कृपा की कि ज़ख्मी भी न किया और मृत्यु का ग्रास बनने से भी बचा लिया, इसलिए यही कहना उचित है कि प्रभु जो करते हैं हमारे कल्याण ही के लिए करते हैं। राजन् ! हमारी दृष्टि छोटी है, प्रभु की आँखें बहुत दूर तक देखती हैं।"

ऐसी कितनी ही घटनाएँ घटती रहती हैं। मानव अल्प बुद्धि के कारण उन्हें समझ नहीं पाता और प्रभु पर विश्वास खो बैठता है, परन्तु पूर्ण विश्वासी का विश्वास कम होने के स्थान पर और भी बढ़ जाता है।

ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ४ के कुछ मन्त्र आपको सुनाता हूँ जिनमें सबसे शक्तिशाली इन्द्र परमात्मा पर विश्वास रखने का आदेश तथा प्रार्थना है; परमात्मा ही संसार के सारे मित्रों से बढ़कर सच्चा मित्र है—

ओ३म् परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम्॥ (ऋ० १।४।४)

"बुद्धिमान् अपराजित सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक परमात्मा के पास जा और उसी से पूछ जो तेरे सारे मित्रों में श्रेष्ठ है।"

सुन लो ! जगत् में जितने हितैषी हैं, प्रभु उन सबसे बढ़कर है। वह सर्वज्ञ है, हमारा भला चाहता है और भला करने की पूरी सामर्थ्य भी रखता है, इसलिए हर कठिनाई में उसी प्रभु से पूछ ! वह सत्यनारायण हमारी आत्मा में बैठा है, वही सरल उपाय बतलायेगा जो हमारे मार्ग की कठिनाई को दूर करने की शक्ति रखता है !

ओम् उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद् दुवः॥ ५॥

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि॥ ६॥

"चाहे हमारे निन्दक हमें कहें कि तुम जो केवल इन्द्र परमात्मा को ही पूजा करते हो, केवल उसी पर विश्वास रखते हो (इस स्थान से) और दूसरे स्थान से भी चले जाओ (५) और चाहे भक्तजन ईश्वर-विश्वासी हमें सौभाग्यवाला बतलायें, पर हे अद्भुत कर्मोंवाले सर्वशक्तिमान् प्रभु ! हम तेरी ही शरण (पनाह) रहेंगे।"

न तो नास्तिकों के उपालम्भ और न भक्तजनों की वाहवाह, कोई भी प्यारे प्रभु के विश्वास और प्यार से हमें इधर-उधर न कर सके। इतना दृढ़ विश्वास भगवान् नारायण के लिए हमारे रोम-रोम में समाया हुआ हो।

एक भक्त की सच्ची घटना सुनाता हूँ। प्रभु-दर्शन पाने की अभिलाषा लेकर तथा लोकसेवा में उन्मत्त होकर उसनें सब-कुछ त्याग रखा था। दुःखी जनों को सुख का मार्ग [illegible] में वह निरन्तर

स्थान-स्थान पर घूमता तथा भ्रमण करता रहता। जिधर जाता जनता उसका मान करती, सिर पर उठा लेती; परन्तु इस मान का उसने कभी ध्यान नहीं किया। हाँ, कभी-कभी उसे यह कहते सुना गया कि तुम्हारे मान पर राख की एक मुट्ठी। तब क्या हुआ कि एक ऐसा आन्दोलन शुरू हुआ जिसके सम्बन्ध में उसने कह दिया कि इसे स्थगित कर देना ही उचित है। उसे कुछ लोगों की ओर से गालियाँ पड़ने लगीं, स्वार्थी लाञ्छन भी लगाने लगे, परन्तु उसे पूर्ववत् लोगों ने हँसता ही पाया। वह प्रभु-प्रेम में उसी प्रकार उन्मत्त था। लोगों ने कहा भी—"इतना अपमान तुम्हारा हो रहा है, तुम फिर भी प्रभु-भक्ति की बातें करते हो?" वह यही कहता—"तुम्हारे इस अपमान पर राख की दूसरी मुट्ठी। यह तो मेरी परीक्षा है कि मैं मान तथा अपमान दोनों में नारायण का विश्वासी रह सकता हूँ या नहीं।" यही पूर्ण विश्वास है।

अटूट श्रद्धा का प्रयोजन क्या?

पूर्ण विश्वासी बनने के साथ उन भगवान् नारायण पर साधक की अटूट श्रद्धा का होना आवश्यक है। श्रद्धा के बिना कोई भी कार्य-सिद्धि नहीं होती, इसीलिए वेद भगवान् ने श्रद्धालु बनने का आदेश दिया है। ऋग्वेद मण्डल १० का १५१वाँ सूक्त है ही 'श्रद्धा-सूक्त'। पहले ही मन्त्र में बतलाया है कि—

श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥ १॥

"श्रद्धा से अग्नि प्रदीप्त की जाती है, श्रद्धा से उसमें हवि होमी जाती है। हम अपने वचन से प्रकट करते हैं कि श्रद्धा ऐश्वर्य की चोटी पर रहती है।"

चौथे मन्त्र में कहा है—

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु॥ ४॥

"देवता और यज्ञ करनेवाले, जिनका प्रभु ही रक्षक है, श्रद्धा की उपासना करते हैं (श्रद्धा को अपने पास रखते हैं)। मनुष्य हृदय के भीतर संकल्प से श्रद्धा को पाता है, और श्रद्धा से नेकी कमाता है।"

पाँचवाँ मन्त्र भी सुन लीजिये! जब देवता और याज्ञिक अर्थात् मनुष्य सभी श्रद्धावान् होना चाहते हैं तब हम क्यों न हों, इसलिए पाँचवें मन्त्र में भक्त प्रार्थना करता है—

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥ ५॥

"हम श्रद्धा को प्रातःकाल बुलाते हैं, श्रद्धा को मध्याह्न के समय, दोपहर पश्चात् बुलाते हैं, श्रद्धा को सूर्यास्त समय बुलाते हैं, हे श्रेष्ठ! हमें इस लोक में श्रद्धावाला बना।"

निस्सन्देह श्रद्धा-हीन व्यक्ति दो कौड़ी का नहीं, श्रद्धा से शून्य का जीवन शुष्क है। उसमें कोई माधुर्य नहीं, न ही कोई सौन्दर्य है; वह केवल लोहे की मशीन है और मशीन भी ऐसी जिसके पुर्ज़ों को कभी भी तेल नहीं मिला। जीवन में माधुर्य और सौन्दर्य तो सदैव श्रद्धा की भावना से उत्पन्न

होते हैं। जिसने शारीरिक साधना, मानसिक साधना और आत्मिक साधना के मार्ग पर चलना है (और इस मार्ग पर हर मानव को चलना ही चाहिए) उसके अन्दर एक सात्त्विक श्रद्धा जाग उठती है, तब उसे सबसे पहले अपने ही ऊपर श्रद्धा होने लगती है और वह आत्मविश्वासी बनकर अपने प्यारे प्रभु की खोज में तत्पर हो जाता है। आत्मविश्वास और ईश्वर-विश्वास ही श्रद्धा है और यह श्रद्धा साधक में एक दिव्य शक्ति, दिव्य सहनशीलता, दिव्य साहस तथा उल्लास की सृष्टि रच देती है। श्रद्धावान् का बेड़ा पार हो जाता है। महाभारत में एक अच्छे तपस्वी जाजलि मुनि का वर्णन आता है। उसे श्रद्धा की महिमा बतलाते हुए कहा गया है कि—

अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पापप्रमोचिनी।
जहाति पापं श्रद्धावान् सर्पो जीर्णामिव त्वचम्॥ ५६। १५॥

"अश्रद्धा सबसे बड़ा पाप है, और श्रद्धा पाप से छुटकारा दिलानेवाली है। जैसे साँप अपने पुराने केंचुल को छोड़ देता है, उसी प्रकार श्रद्धालु पुरुष पाप का परित्याग कर देता है।"

फिर श्रद्धा जब अटूट हो, निरन्तर एकरस बनी रहे, तब तो भव-पार होने में कोई सन्देह करता ही नहीं। अटूट श्रद्धा की मात्रा इतनी बढ़ जाये कि वह शुद्ध प्रेम का रूप धारण कर ले, तब श्रद्धा साधक की सारी शुभ कामनाएं पूर्ण कर देती है। ऋग्वेद में कहा भी है—

श्रद्धया विन्दते वसु। (१०। १५१। ४)

"श्रद्धा से अभीष्ट की सिद्धि होती है", जो भी चाह हो वह पूरी होती है।

गंगोत्री पर्वत की ऊँचाई साढ़े दस हज़ार फ़ीट है जहाँ ज्येष्ठ-आषाढ़ में तीन कम्बलों के

बिना निद्रा नहीं आती, इतना शीत होता है। परन्तु एक वृद्धा माता मलमल का कुर्त्ता पहने वहाँ जा पहुँची, भयंकर चढ़ाई-उतराई भी इसे रोक न सकी। मैंने माता से पूछा—"माँ, इतने निर्बल शरीर से, इतने कम वस्त्रों में इस हिमाच्छादित पर्वत पर कैसे पहुँच पाई?" साथवाले साधु ने कहा—"गंगोत्री पहुँचने की इसकी उत्कट इच्छा थी—वही श्रद्धा इसे यहाँ तक ले आई है।"

श्रद्धा को धर्म की पुत्री भी कहा गया है, जिससे पवित्रता मिलती है—

श्रद्धा धर्मसुता देवी, पावनी विश्वभावनी।
सावित्री प्रसवित्री च, संसारार्णवतारिणी॥ (पद्म०)

"श्रद्धा देवी धर्म की पुत्री है, विश्व को पवित्र एवं अभ्युदयशील बनानेवाली है। इतना ही नहीं, वह सावित्री के समान पावन, जगत् को उत्पन्न करनेवाली तथा संसार-सागर से उद्धार करनेवाली है।"

श्रद्धा-भक्ति से की हुई प्रभु-आराधना ही पूरा फल देती है। वेद भगवान् ने भी यही आदेश दिया हुआ है। ऋग्वेद २।२६।३ का मन्त्र कितनी श्रद्धा बढ़ानेवाला है—

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम्॥ ऋ० २।२६।३॥

"जो भक्त श्रद्धायुक्त मन वाला होकर भक्ति से सूर्यचन्द्रादि तथा विद्वानों के पालक परमेश्वर की पूजा करता है वहीं उत्तम मनुष्यों से, वह प्रजा से, वह अपने जन्म से, वह अपने पुत्रों से, ज्ञान का सम्पादन करता है, अपने साथियों द्वारा वह पुरुष धन से पूर्ण होता है।"

परन्तु श्रद्धा का प्रयोजन यह नहीं है कि आप किसी अनृत बात पर श्रद्धा कर बैठें तो उसका भी यही फल होगा। न, ऐसी बात नहीं है। श्रद्धा का अर्थ ही यही है कि सत्य और यथार्थ बात पर श्रद्धा की जाये, "श्रत् सत्यम् धा धारणे।" सत्य का धारण श्रद्धा ही से होता है और तभी मन में साहस, हृदय में प्रसन्नता की छटा आ जाती है और निश्चित रूप से सफलता मिल जाती है। अनृत बात पर श्रद्धा सात्त्विक नहीं होती अपितु तामसी या राजसी श्रद्धा होती है। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा भी है—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां श्रृणु ॥ २ ॥
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ (गीता० १७ । २, ३)

"हे अर्जुन ! शरीरधारियों की श्रद्धा स्वभाव से ही तीन प्रकार की होती है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। उनको तू अब मुझसे सुन ॥२॥ हे अर्जुन ! सबकी श्रद्धा अन्तःकरण के अनुसार ही होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है। जिस पुरुष की जैसी श्रद्धा होती है वह वैसा ही होता है ॥३॥

तब तामसी श्रद्धा करने का क्या लाभ ? सात्त्विकी श्रद्धा ही वास्तविक श्रद्धा है।

अनन्य भक्ति का प्रयोजन क्या है ?

पूर्ण विश्वास और अटूट श्रद्धा के साथ अनन्य भक्ति का होना भी अनिवार्य है। उस सर्वव्यापी, जल-थलवासी, शक्तिशाली ओ३म् परमात्मा के अतिरिक्त हमारे अन्तःकरण पर और किसी का अधिकार न हो। वही हमारा प्यारा हो, प्रियतम हो। हाँ, विश्वसुन्दरियों में वही एक हमारी प्रियतमा हो, वही हमारी अभिलाषा हो, वही हमारे जीवन का अन्तिम लक्ष्य हो, ध्येय हो। वही हमारा जीवन हो, वही प्राण हो। जिधर देखें, उसी को देखें। जहाँ देखें उसी को देखें। यहाँ तक कि—

आ प्यारे मेरे नैन में, पलक ढाँप तोहे लूँ।
ना मैं देखूँ और को, न तोहे देखन दूँ॥

पूर्ण विश्वास तथा अटूट श्रद्धा की सुन्दर वाटिका में जब भक्ति का सोता बहता है, तब वह वाटिका लहलहा उठती है, सूखे तनों में भी कोपलें फूट पड़ती हैं। परन्तु भक्ति कहते किसे हैं ? भक्ति कहते हैं—अपने मालिक, अपने स्वामी, अपने प्रभु के एक-एक संकेत और एक-एक आज्ञा पर अपने-आपको एक सच्चे सेवक की तरह न्यौछावर कर देने की अभिलाषा को। परमात्मा ही तो सच्चा मालिक है, स्वामी है, प्रभु है। तब उसी की आज्ञा में चलना, उसी के प्रेम में मस्त रहना; अनन्य भक्त दुकानदारी नहीं करता, वह हानि-लाभ का हिसाब नहीं रखता।

जहाँ प्रेम तहाँ नेम नहीं, तहाँ न विधि-व्यवहार।
प्रेम-मगन जब मन भया, तब कौन गिने तिथि-वार॥

व्याकरण के अनुसार भक्ति का अर्थ है—"विश्वासपूर्वक निष्कपट सेवा"। और अनन्य भक्त उसे कहते हैं जिसे प्रभु के अतिरिक्त और कुछ सूझे ही नहीं। योग-दर्शन ने अनन्य भक्ति ही को ईश्वर-प्रणिधान का नाम दिया है। गीता ने इसी को शरणागति कहा है। उपासना शब्द भी यही रंग दिखाता है। मतलब यह है कि भक्त अपने मालिक के बिना एक क्षण भी न रह सके। भक्ति की भावना एक नशा है, जो अत्यन्त रसीला, मीठा और स्वादु है। जब एक बार यह नशा चढ़ जाता है, फिर उतरता नहीं, प्रतिदिन यह नशा घना ही होता चला जाता है।

भक्ति-रस ही को सामवेद में सोम कहा है, और यह रस कोई भौतिक नहीं, दिव्य है। इस विलासमय भोग-प्रधान कलिकाल में मानव-जीवन के भक्त यात्री को यदि कोई सहारा देता है, तो यह भक्ति-रस ही का सहारा है। इस मरुस्थली में पग-पग पर तप रहे सूखे स्थानों की भयंकरता को माधुर्य में परिवर्तित करनेवाला भक्ति-रस ही है। जहाँ पापों, अत्याचारों, असत्य व्यवहारों की आँधियाँ चल रही हैं, वहाँ यही भक्ति-रस इन आँधियों-झंखड़ों में सूखे अधरों पर शान्ति की शीतल बूंद बनकर उनको हरा कर देता है।

भक्ति क्या करती है? यह भक्त को भगवान् का प्यारा बना देती है। इसलिए श्रीमद्-भागवत में यह कहा गया है कि—

अकामः सर्वकामो यः मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥ २।३।१०॥

"जो कुछ भी नहीं चाहता, जो सब-कुछ चाहता है, जो केवल मोक्ष चाहता है, वह उदार-बुद्धि मानव तीव्र भक्ति-योग द्वारा परम पुरुष प्रभु की आराधना करे।"

जब भक्त अपने-आपको प्रभु के अर्पण कर देता है तो भगवान् भी उसको अपना लेता है, तब भक्त की सारी कामनाएँ स्वयमेव पूर्ण हो जाती हैं। वेद भगवान् ने तो यहाँ तक बतला दिया है कि भक्ति द्वारा चित्त-बुद्धि सब-कुछ पवित्र हो जाता है—

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षुषे विधेम हविषा वयम्॥ अथर्व० ६।४१।१॥

"हम सब मन के लिए, चित्त के लिए, बुद्धि के लिए, शुभ संकल्प के लिए और ज्ञान के लिए, मनन के लिए, श्रवण के लिए, दर्शनादि शक्तियों के विकास के लिए भक्ति द्वारा भगवान् की आराधना करें।"

श्री सत्यनारायण-व्रत-कथा में यही व्रत लेने का आदेश है। ऐसा व्रत लेकर दिल-जान से व्रत का पालन करनेवाले भक्तों के योग-क्षेम की ज़िम्मेदारी भगवान् पर आती है। एक बार पूर्ण विश्वास, अटूट श्रद्धा तथा अनन्य भक्ति से यह व्रत लेकर देखो तो सही—

सारी दुनिया से हाथ धोकर देखो, जो कुछ भी रहा-सहा है खोकर देखो।
क्या अर्ज़[1] करूँ कि इसमें क्या लज्ज़त[2] है, इक मरतबा किसी के होकर देखो॥

---

१. निवेदन। २. स्वाद—सुख—आनन्द।

पाँचवाँ सत्संग

प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

आपको विदित हो गया कि सत्यनारायण किसे कहते हैं, और उसका व्रत लेने का प्रयोजन क्या है। अब श्री सत्यनारायण-कथा का आरम्भ होता है—

सत्यनारायण की कथा ऐसी है जो कभी समाप्त नहीं होती, और वास्तविक बात यह है कि इस कथा का आरम्भ भी कोई नहीं है, क्योंकि जब नारायण ही का न आदि है न अन्त, तब नारायण की कथा भी तो ऐसी ही है। फिर प्रभु की कहानी अकथ कहानी है। इसे पूर्णरूप से आज तक न कोई सुना सका, न आगे कोई सुना सकेगा, तब मैं क्या करने लगा हूँ ? मेरी इतनी सामर्थ्य कहाँ कि अल्पज्ञ होकर सर्वज्ञ की कथा सुना सकूं ? यह तो कोरी विडम्बना होगी, सर्वथा अनधिकार चेष्टा होगी। हाँ, जैसे गंगा नदी से कुछ घूंट जल पीकर कोई प्यासा अपनी प्यास बुझा लेता है, वैसे ही मैं भी उस अथाह गहन गम्भीर प्रभु की अमर कहानी के दो अक्षर लेकर अपने प्यासे आत्मा को तृप्त करूँगा। कथा सुनने का तो केवल एक बहाना है; मैं तो अपने ही जीवन को सफल बनाने का इसे एक सुन्दर सुअवसर समझता हूँ। उस प्यारे प्रभु के गुण वर्णन करने और सुनने में जो घड़ी बीते, वही हमारे जीवन की वास्तविक घड़ी है। अहा ! इस कथा के जिस नेता ने सोई प्रकृति को जगा दिया,

एकरूपा को अनेकरूपा बना दिया, और उसी प्रकृति को विकृत करके अनेक सूर्य, अनेक नक्षत्र, अनेक पृथिवियाँ, अनेक समुद्र और अनेक मण्डल तथा लोक बना दिये, उनकी कथा कितनी मनोरंजक है ! रूस ने दो नन्हे-से खिलौने बनाकर आकाश से भी ऊपर भेज दिए, जो कितने ही दिन पृथिवी के गिर्द घूमते रहे। इस मृत्यु-लोक के वासी रूस के वैज्ञानिकों की इस तीव्र बुद्धि पर वाह-वाह कह उठे, परन्तु उस सबसे बड़े वैज्ञानिक के गुण गानेवाले कितने हैं, जिसने अनेक सूर्य, अनेक चन्द्र दो अरब वर्षों से घुमा रखे हैं और अभी दो अरब वर्ष और घूमते रहेंगे ! फिर ये सारे पदार्थ मानव के कितने काम आनेवाले हैं ! मानव का जीवन ही इनसे है। और ये एक-दो नहीं; ये इतने हैं कि इनकी गणना हो ही नहीं सकती। आजकल के वैज्ञानिक अपने अल्प साधनों से अभी इतना जान पाये हैं कि आकाश में रात को जो आकाशगंगा दिखाई देती है, इसी में डेढ़ अरब सितारे चमक रहे हैं। इस समय तक दो अरब सौरमण्डल देखे जा चुके हैं और हरेक सौरमण्डल (Solar System) में वैसे ही सूर्य, चन्द्र, पृथिवी तथा अन्य नक्षत्र और तारामण्डल हैं जैसे हमारे सौरमण्डल में हैं। वेद में तो अनेक सूर्यों का वर्णन है और इनके विस्तार का क्या कथन है ! आकाशगंगा (Milkyway) ही का व्यास कितने मील है, जानने के लिए १७६३ के आगे १६ बिन्दु लगाने होंगे, जिसकी गणना हो ही नहीं सकती। हमारा सौरमण्डल शेष सारे सौरमण्डलों से छोटा है, परन्तु इस सौरमण्डल में जो बृहस्पति (Jupiter) नक्षत्र है, यह सारे नक्षत्रों से बड़ा है। हमारे सारे सौरमण्डल के सारे नक्षत्र, सारे तारे, चाँद, सूर्य इत्यादि भी और इन सबके अतिरिक्त हमारी पृथिवी जैसी १३५० पृथिवियाँ भी इस बृहस्पति में रख दी जायें, तो भी इसमें पर्याप्त स्थान खाली रह जायेगा। हमारी पृथिवी का व्यास

(Diameter) आठ हजार मील है, और बृहस्पति नक्षत्र का नव्वे हज़ार मील है। हमारी ज़मीन ६६ हज़ार ६०० मील प्रति घण्टा चलती है और बृहस्पति तीस हजार मील चलता है। बृहस्पति सूर्य से ४८ करोड़ तीस लाख मील दूरी पर है। यह मंगल से अधिक चमकीला है और शुक्र से दूसरे नम्बर पर है। प्रकाश की गति एक क्षण में एक लाख चालीस हज़ार मील है और कुछ नक्षत्र इतने दूर हैं कि उनका प्रकाश पिछले दो अरब वर्षों का चला हुआ भी अभी तक हमारे पास पहुँच नहीं पाया। अनुमान लगाओ कितना बड़ा विस्तार इस सृष्टि का है! फिर ये सारे सौरमण्डल एक बहुत बड़े सूर्य महासूर्य के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं और वह महासूर्य उसी सत्यनारायण-परमात्मा के नन्हे-से संकेत में बँधा सारे सौरमण्डलों को ठीक व्यवस्था में रख रहा है। फिर यह जिसे अणु और परमाणु कहते हैं यह अत्यन्त नन्हा ऐटम (Atom) भी एक पूर्ण सौरमण्डल है। इसे सौरमण्डल का छोटा-सा नमूना (Miniature Solar System) कह सकते हैं। और फिर केवल यही एक सृष्टि नहीं है, न जाने कितनी सृष्टियाँ प्रतिदिन बनती और उजड़ती रहती हैं! आजकल के वैज्ञानिकों ने हमारी पृथिवी से १४७००००००००००००००००००० (१४७ के आगे १६ बिन्दु) मील दूर प्रकृति की वह अवस्था देखी है जो विकृत होकर रूप धारण करने लगती है। और जिस महान् शक्ति की आप कथा सुन रहे हैं, वह इन सारी बनती-बिगड़ती सृष्टियों ही में ओत-प्रोत नहीं है अपितु उनकी नन्ही-सी ही सामर्थ्य यह सारे कार्य करा रही है, और शेष उसके तीन भाग अव्यक्त हैं, जिन्हें कोई भी जान नहीं सकता। हमारी कथा का 'नेता' इतना महान् है कि बुद्धि कार्य नहीं कर सकती।

अकबर ने खूब कहा है—

किया है जिसने इस आलम[1] को पैदा उनको क्या कहिये।
ख़िरद[2] ख़ामोश है और दिल ये कहता है ख़ुदा कहिये॥

बालक की तो बात क्या, बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी आश्चर्यचकित हैं कि वह प्रभु कितना महान् है, कितना अद्भुत है! बुद्धि में वह आए भी कैसे? बुद्धि सीमित, वह असीम, लोटे में समुद्र कैसे समा सके? ठीक ही तो है—

जेहन[3] में जो घिर गया ला-इन्तहा[4] क्योंकर हुआ।
जो समझ में आ गया फिर वह ख़ुदा क्योंकर हुआ॥

सुन लिया आपने? किसकी कथा सुनने बैठे हो? हमारे पूर्वज इसीलिए उसके सम्बन्ध में "नेति-नेति" ही कह उठे। नहीं आता है वह समझ में। वैज्ञानिक भी चुप हो जाते हैं उसकी महिमा देखकर—

हजार साइन्स रंग लाये हजार कानून हम बनायें।
ख़ुदा की कुदरत वही करेगी हमारी हैरत[5] यही रहेगी॥

वेद परमात्मा की अपनी वाणी है। वेद से बढ़कर परमात्मा की कथा और कौन वर्णन कर सकता है! और वेद ने स्वयं कहा है—

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ (यजु० ३१। ३४)

१. सृष्टि। २. बुद्धि। ३. मस्तिष्क। ४. असीम। ५. आश्चर्य।

इस पुरुष परमेश्वर का सम्पूर्ण भूमण्डल एक पादवाला सामर्थ्य है और इसका द्युलोक अमृत-स्वरूप तीन पादवाला सामर्थ्य है, अर्थात् ईश्वरीय सृष्टि में प्रकाश्य जगत् एक गुणा है और प्रकाशक उससे तीन गुणा है। और उस तीन गुणा प्रकाशक जगत् से भी ऊपर वह विष्णु सर्वव्यापक नारायण विराजमान हैं। यूँ कहो कि उसकी कोई सीमा नहीं। परन्तु मानव तो ज़मीन पर ही रहता है, तब इतनी ऊँची बातों से क्या लाभ? मानव तो सीमा में ही रहेगा; प्रभु की महाशक्ति का पता कैसे लगा सकता है!

यह माना हुस्न[1] का जलवा[2] ज़मीं से आसमाँ तक है।
मगर है देखना मैंने नजर मेरी कहाँ तक है॥

तो आओ उस महान् प्रभु की गाथा अपनी सामर्थ्य के अन्दर ही सीमित रहने दें। भगवान् वेद इस नारायण के सम्बन्ध में क्या कहता है। सुनो—

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
यो अर्यः पुष्टीर्विज इवामिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः॥ (ऋ० २।१२।२)

"जिसके विषय में यह भयंकर बात पूछते हैं कि वह कहाँ है? और निस्सन्देह कहते हैं कि वह नहीं है, वह शत्रु की पुष्टियों की (खेल के) शर्त की तरह जीत लेता है। उसके लिए श्रद्धा करो। हे जनो! वह शक्तिशाली नारायण है।

१. सौन्दर्य। २. ज्योति-प्रकाश।

"येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि"। (ऋ० २।१२।४)

"जिसने ये सब लोक गतिवाले—हरकत करनेवाले—बनाये हैं।"

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहत् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः॥ (ऋ० २।१२।२)

"जिसने हिलती हुई पृथिवी को दृढ़ किया, जिसने जोश में आए हुए पर्वतों को आराम दिया, जिसने बहुत बड़े अन्तरिक्ष को मापा है, जिसने द्यौ का सहारा दिया हुआ है, हे जनो! वह शक्तिशाली भगवान् नारायण है।"

ऐसा महान् प्रभु हमारी रक्षा करता है। वही सच्चे हृदय से निकली प्रार्थना को सुनता है, वह वरुण प्रभु दुःखियों की टेर सुनकर उसके कष्ट हरता है। सामवेद के ३४६वें मन्त्र में कहा है—

ओं श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति।

"जो अपने-आपको इन्द्र-परमात्मा-नारायण के अर्पण कर देता है, उसी की पूजा करता है, प्रभु अन्तर्ध्यान हुए उस (भक्त) की टेर-प्रार्थना-याचना को सुनते हैं।"

और ऋग्वेद २।२३।४ में यह आदेश है कि—

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत्।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम्॥

"हे बृहस्पति-परमात्मा-नारायण ! आप भक्तों-मनुष्यों को ठीक रास्ते, ठीक नीति पर ले जाते हो और उनकी रक्षा करते हो। जो भक्त अपने-आपको आपके प्रति समर्पण करता है, उस भक्त को पाप छू नहीं पाता। ब्रह्मद्वेषियों को तू मन्यु से ठीक करता है, यह तेरी बड़ी भारी महिमा है।"

चारों वेद उसी नारायण की गाथा सुनाते हैं, पूरी गाथा वेद के स्वाध्याय ही से सुनी जा सकती है। यहाँ तो केवल संकेत ही किया जा रहा है। अब देखिये कि उपनिषदों के उन ऋषियों ने, जिन्होंने उस नारायण के दर्शन पाए, क्या अनुभव बतलाए हैं—

कठोपनिषद् का ऋषि यह आदेश देता है कि—

"सारे संसार को वश में करनेवाला एक ही 'वशी'-नारायण है, सब भूतों का अन्तरात्मा वही है, एक रूप को अनेक बनानेवाला वही है। आत्मा के भीतर उसका वास है, वह आत्मस्थ है। आत्मा में बैठे हुए उस ब्रह्म-प्रभु-नारायण को जो धीर लोग देख लेते हैं, उन्हें निरन्तर सुख प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं।"

"नित्यों में वही एक-मात्र नित्य है, चेतना में वही चेतन है, अनेकों में वही एक है, एक होता हुआ भी जो सबकी कामनाओं को पूर्ण करता है, उसका वास आत्मा के अन्दर है। उसे जो धीर पुरुष देख पाते हैं, उन्हीं को निरन्तर शान्ति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं।"[1] और इसी

१. एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ (पाँचवीं वल्ली मं० १२। १३)

कठोपनिषद् की दूसरी वल्ली में ऋषि बतलाता है कि उस भगवान् नारायण का नाम क्या है, जिसका सहारा लेकर मानव लोक-परलोक सुधार लेता है।

"जिस पद का वेद बार-बार वर्णन करते हैं, तपस्वी जिसके लिए तप तपते हैं, जिसकी चाहना में ब्रह्मचर्य धारण करते हैं संक्षेप में यह शब्द तुझे बतलाता हूँ—वह 'ओ३म्' है, यह ओ३म् का अक्षर है" ॥१५॥[1]

"यह ओ३म् का अक्षर है, परन्तु यही ब्रह्म है, यही सबसे परे है। इसी अक्षर को जानकर जो कोई जो कुछ इच्छा रखता है, वह उसकी पूर्ण होती है" ॥१६॥

"यह (ओ३म्) सबसे श्रेष्ठ सहारा है, इसी का सबसे अन्तिम सहारा है। इसी सहारे को जानकर ब्रह्मलोक में मनुष्य महान् हो जाता है" ॥१७॥

और श्वेताश्वतरोपनिषद् में ऋषि स्पष्ट रूप से यह बतलाते हैं कि—

"संसार के मायाजाल को बिछानेवाला वही एक है, अपनी शक्तियों से वही इस मायाजाल का स्वामी है, अपनी शक्तियों से सब लोकों का भी वही स्वामी है। संसार के उत्पन्न करने और स्थिति में वही एक कार्य कर रहा है। जो यह जान जाते हैं वे अमृत हो जाते हैं" ॥ ३ । १॥

१. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥१५॥

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६ ॥

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥

"वह पुरुष-परमात्मा-नारायण आत्मा के भीतर सदा मनुष्यों के अंगुष्ठमात्र हृदय में निवास करता है। हृदय से, बुद्धि से, मन से उसे पाया जा सकता है। जो यह जानते हैं वे अमृत हो जाते हैं" ॥ ४ । १३ ॥

"उसका कोई 'रूप' नहीं है जो आँखों के सामने ठहरे और न आँखों से उसे कोई देख पाता है। वह हृदय में स्थित है। इसलिए जो 'हृदय और मन से' उसे इस प्रकार जानते हैं वे अमृत हो जाते हैं" ॥ ४ । २० ॥

दुनिया की जितनी भागदौड़ है वह केवल इसलिए है ताकि हमें सुख मिले और यह सुख उसी प्रभु-परमात्मा-नारायण की शरण ही से मिलता है। यही बात वेद भगवान् भी और उपनिषद् के ऋषि भी कह रहे हैं, और यही बात नारद जा को विष्णु-लोक (हृदय) में ध्यानावस्था प्राप्त करने के पश्चात् प्रभु-प्रेरणा से ज्ञात हुई।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के अन्त में पूरे बल के साथ ऋषि ने यह घोषणा की है कि—

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा वेदमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥ ६ । २० ॥

"जब लोग चमड़े की तरह आकाश को लपेट सकेंगे तब उस देव-ईश्वर-नारायण को जाने बिना भी दुःख का अन्त होने लगेगा।"

तात्पर्य यह है कि आकाश को चर्म या चटाई की तरह लपेटना असम्भव है; इसी प्रकार परमात्मा को जाने बिना, प्रभु के दर्शन पाने का व्रत लिये बिना, दुःखों का अन्त होना असम्भव है।

श्री सत्यनारायण-व्रत लेने का मतलब यही है कि पूरे आस्तिक बनकर, प्रभु-आज्ञाओं का पालन करते हुए उसी को अपना मित्र बनाकर जीवन-कर्त्तव्य पूर्ण किये जायें। परमात्मा ही एकमात्र सहारा है जो कभी धोखा नहीं देता; हर समय मानव-यात्री के अंग-संग रहता है। उसी को अपनाने, उसी का होकर रहने का व्रत यदि दुनिया के लोग ले लें तो निःसन्देह मानव दुःखों से बचा रहे और सच्चा सुख भी मिल जाये। आज की दुनिया के कष्टों-क्लेशों का सबसे बड़ा कारण यही है कि आज का मानव परमात्मा से, नारायण से विमुख हो गया है और केवल शरीर ही, केवल माया ही उसके सामने है। श्री नारद जी को नारायण ने यही बतलाया कि यदि दुनिया के लोग सत्यनारायण परमात्मा का व्रत ले लें और उसी की कथा-वार्ता सुना करें तो दुनिया सुख का श्वास लेने लगे। इसके बिना मानव-जीवन नष्ट ही होता रहेगा।

श्रोता—महाराज ! क्षमा चाहता हूँ, एक संशय सामने आ गया है।

वक्ता—क्या संशय आ गया ?

श्रोता—भगवन् ! बड़े आश्चर्य से देख रहा हूँ कि आजकल बहुधा दुःखी, परमात्मा के भक्त ही दिखाई देते हैं। मैं अपनी कहूँ—मैं जितना अधिक भजन करता हूँ, उतना कष्ट बढ़ जाता है। यह क्यों ?

वक्ता—विना कारण के तो कार्य होता नहीं। जिस संशय की बात आपने कही है उसका भी कारण है। सबसे पहली बात तो यह है कि भोग सबको भोगने ही पड़ते हैं। भगवान् राम को भी १४ वर्ष जंगलों में भटकना पड़ा। सीता माता को रावण की कैद में रहना पड़ा। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि

भी शारीरिक यातनाएँ सहन करते रहे। इसलिए ये भोग तो भोगने ही पड़ेंगे। भक्ति से सहनशक्ति आ जाती है, जो कष्टों-क्लेशों को सुगम बना देती है।

दूसरी बात यह है कि हम भक्ति नहीं करते, दुकानदारी करते हैं। जो दुकानदार है, उसे यदि लाभ होता है तो उसे घाटे के लिए भी तैयार रहना होगा। कभी भजन से सुख मिल गया और कभी दुःख भी मिल गया

तीसरी बात यह है कि हमारी भक्ति "अनन्य भक्ति' नहीं होती। नाम तो प्रभु का रटा जा रहा है और वृत्ति कहीं और है। भक्ति तभी सफल होती है जब भक्त तन्मय हो जाये, अपनी सुध खो दे। आपको इस सम्बन्ध में एक सच्ची घटना सुनाता हूँ—

अकबर बादशाह दिनभर यात्रा करते-करते दूर निकल गये। चलते-चलते नमाज़ का समय हो गया। तब मार्ग में ही एक ओर नमाज का वस्त्र बिछाकर दो-जानु हो गये। उधर एक नवयुवती अपने पतिदेव को ख़ोजती आ रही थी। उसके पतिदेव प्रातः के गये घर लौटे नहीं थे। यह सच्ची देवी पति-वियोग में उन्मत्त इधर-उधर दृष्टि डालती जा रही थी। अपने विचार में निमग्न उसने नमाज़ का कपड़ा देखा नहीं और उसी के ऊपर पग रखती आगे बढ़ गई। अकबर को उसकी गुस्ताखी पर क्रोध तो आया परन्तु चुप साधे रखी। थोड़ी ही देर में जब अपने पतिदेव के साथ युवती लौटी तो अकबर कहने लगा—"तुझे दिखा नहीं, मैं नमाज़ में प्रभु-भक्ति में था? तुझे जाए-नमाज़ भी नज़र नहीं पड़ा, पग रखती चली गई?"

युवती ने बड़े धैर्य से एक दोहा पढ़ा—

नर-राची सूझी नहीं, तुम कस लख्यो सुजान।
कुरान पढ़त बौरे भयो, नहिं राच्यो रहमान॥

"मैं तो अपने पतिदेव की खोज में गुम हो चुकी थी जिससे मुझे कुछ सूझा नहीं, परन्तु तुम तो प्रभु-भजन में थे, मुझे कैसे देख लिया? मालूम होता है कि कुरान ही पढ़कर बौरा गये हो, भगवान् में भी अभी प्रीति नहीं हुई।"

अकबर यह उत्तर सुनकर अवाक् रह गया और बतलाया जाता है कि अकबर अक्सर लम्बा श्वास लेकर यही दोहा बार-बार दोहराया करता था। यदि ऐसे लोगों को कष्ट में देखा जाये तो फिर आश्चर्य क्यों?

तीसरी बात यह है, प्रभु-भक्तों को वह सत्यनारायण सर्वथा शुद्ध करने के लिए भी कार्य करता रहता है। आपने तो अपनी बात कही कि 'जितना भजन करता हूँ, कष्ट उतना बढ़ जाता है।' अब मैं अपनी सुनाता हूँ कि भयंकर ज्वर ने मेरे शरीर को जकड़ लिया। सिर से पाँवों पर्यन्त असह्य पीड़ा तथा वेदना होती थी। एक मास चारपाई पर पड़ा रहा। तब एक दिन मैंने अन्तरात्मा से पूछा, इतना कष्ट क्यों? तब मुझे यह उत्तर मिला कि 'पिछला सारा वर्ष तुम निरन्तर भ्रमण में रहे हो। आत्मचिन्तन के लिए गंगोत्री भी नहीं जा सके। जगह-जगह पर तुमने जल पिया है, नाना प्रकार के अन्न खाये हैं। दूषित अन्न भी खाये हैं, कुछ रजोगुण में भी पड़े हो। पाप की कमाई का

अन्न चाहे भिक्षा ही में खाया हो, मन को बिगाड़ता है। ऐसे दूषित अन्न से बना रक्त शुष्क होना चाहिए, तभी मन-बुद्धि ठीक रह सकती है, अन्यथा बिगड़ने का भय है। इसीलिए तुम्हारे सारे शरीर की शुद्धि और मन-बुद्धि के "काया-कल्प" के लिए ऐसे ही भयंकर ज्वर की आवश्यकता थी, जो सारा रक्त चूस लेता। यह तुम्हें कष्ट नहीं दिया जा रहा—तप की भट्ठी में डालकर स्वर्ण की मैल को दूर किया जा रहा है। यह उत्तर सुनकर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो गया। श्री नारायण को बारम्बार धन्यवाद किया। पिछला दूषित रक्त चला गया, अब नया शुद्ध रक्त रगों में दौड़ने लगा है। क्या ऐसी घटना को कष्ट कहा जा सकता है?

श्रोता—महाराज! आपने तो सारे संशय को मिटा दिया।

वक्ता—मेरे सज्जनो! सत्यनारायण का व्रत लेने और उसकी कथा सुनने का यही लाभ है कि उस महान् प्रभु की शक्ति, महिमा और अपार कृपा का अनुभव होने लगता है। कष्ट कष्ट प्रतीत नहीं होते; गरीबी बुरी नहीं, अच्छी लगने लगती है। जैसे घर का सामान कुर्क होते देखकर कबीर ने माँ से कहा था—"माँ! हम कितने भाग्यशाली हैं कि लोग तो माया से भागने के लाख यत्न करते हैं और हमसे माया आप ही आप भागकर जा रही है!" और नरसी मेहता की बात क्या नहीं सुनी? जब उसकी पत्नी, पुत्र, सभी का देहान्त हो गया तो नरसी भक्त कहने लगा—"अच्छा हुआ, जंजाल से मैं छूट गया, अब निश्चिन्त होकर भजन करूँगा।"

यदि दुनिया के लोग इतने ईश्वर-विश्वासी और प्रभु-भक्त बन जायें, तो फिर कष्ट कहाँ

रहेंगे! परमात्मा या नारायण सर्वव्यापक है। एक भक्त उसे जहाँ पुकारेगा, वह नारायण टेर अवश्य सुनेगा। इसलिए सामवेद में यह आता है कि—

ओ३म् योगे योगे तव स्तरं वाजे वाजे हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये॥ (साम० १६३)

"हर समय, भीड़ पड़ने पर, प्रत्येक युद्ध में हम सारे मित्र अति बलवान् परमात्मा को पुकारते हैं।"

और फिर अगले मन्त्र में कहा है—

आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभि प्रगायत।
सखायः स्तोमवाहसः॥ (साम० १६४)

"हे मित्रो! आओ बैठो और स्तुति का प्रवाह चलाते हुए प्रभु का, नारायण का, भगवान् का कीर्तन करो।"

यही है दुःखों से बचने का मार्ग, परन्तु आज की दुनिया ने माया इकट्ठा करना ही दुःखों से बचने का एकमात्र साधन समझ रखा है।

ओ दुःखी संसारी लोगो! सुनो—

खोजो खोयो खाक में, अनुपम जीवन-रत्न।
कीन्हों मूर्ख क्यों नहीं, प्रभु-मिलन का यत्न॥

खोजी खटपट छोड़ि के, प्रभु-पद में मन जोड़;
काज न देगी अन्त में, पूँजी लाख करोड़ ।।

प्रभु ही को अपना सच्चा साथी बना लो, तब जीवन पूरी प्रसन्नता से सफल होगा—

दीप जले बिन बाती न।
जीवन कटे बिन साथी न ।।

ऐ मेरी माताओ तथा सज्जनो! यही उस सत्यनारायण की कथा है। आओ, उस प्यारे प्रभु का गीत हम सब मिलकर गायें—हाँ, पूरी मस्ती से गायें—

मिलता है सच्चा सुख केवल भगवान् तुम्हारे चरणों में।
यह विनती है पल-पल क्षण-क्षण रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।

—चाहे बैरी कुल संसार बने,
चाहे जीवन मुझ पर भार बने।
चाहे मौत गले का हार बने,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।

—चाहे कष्टों ने मुझे घेरा हो,
चाहे चारों ओर अंधेरा हो।
पर चित्त न डगमग मेरा हो,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।

—चाहे काँटों में मुझे चलना हो,
चाहे अग्नि में मुझे जलना हो।
चाहे छोड़ के देश निकलना हो,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।

—मेरी जिह्वा पर तेरा नाम रहे,
तेरी याद सुबह और शाम रहे।
बस काम ये आठों याम रहे,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।

—मिलता है सच्चा सुख केवल,
भगवान् तुम्हारे चरणों में।
यह विनती है पल-पल क्षण-क्षण,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।

कितना माधुर्य है आप सबके मिलकर गाने में! परन्तु आज सब व्रत ले लो कि हम सदा-सर्वदा परमात्मा की भक्ति में तत्पर रहेंगे।

भक्ति एक दिव्य नशा है, इसी नशे को पिये रखो, फिर देखो—दुःख कहाँ भाग जाते हैं। सुख; हाँ, शाश्वत सुख यदि कहीं मिलता है तो वह प्रभु ही के पास मिलता है और इसका सरल उपाय यह है कि अपने-आपको प्रभु के अर्पण किये रखो। यह व्रत लेकर अपना लोक-परलोक दोनों सुधार लो।

ओ३म् शम्

□□

गायत्री आफ्सैट प्रैस, लाजपत नगर, नई दिल्ली